पूजा शर्मा, आठ वर्ष, ग्वालियर

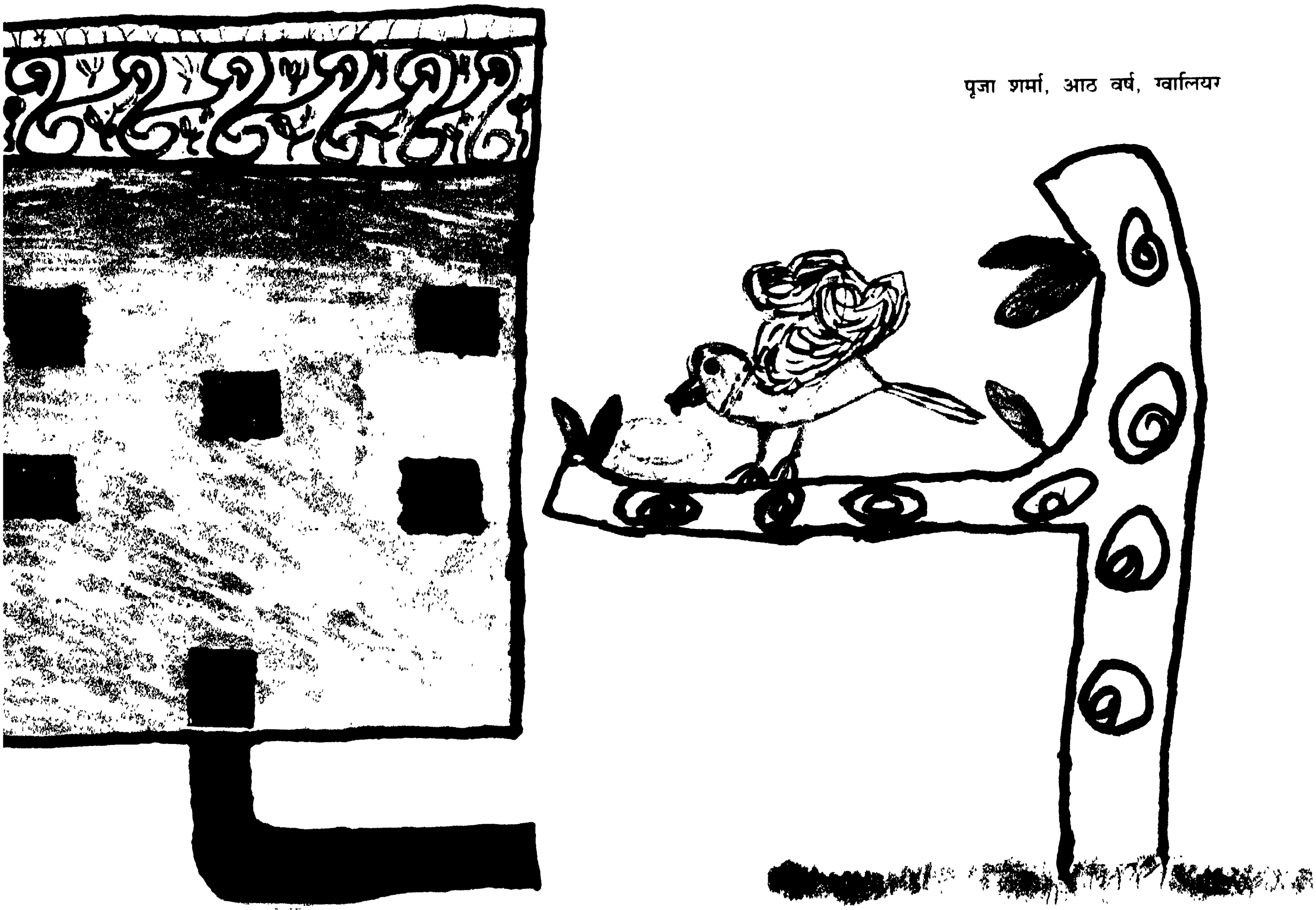

ममता वासनिक, चौदह वर्ष, धार

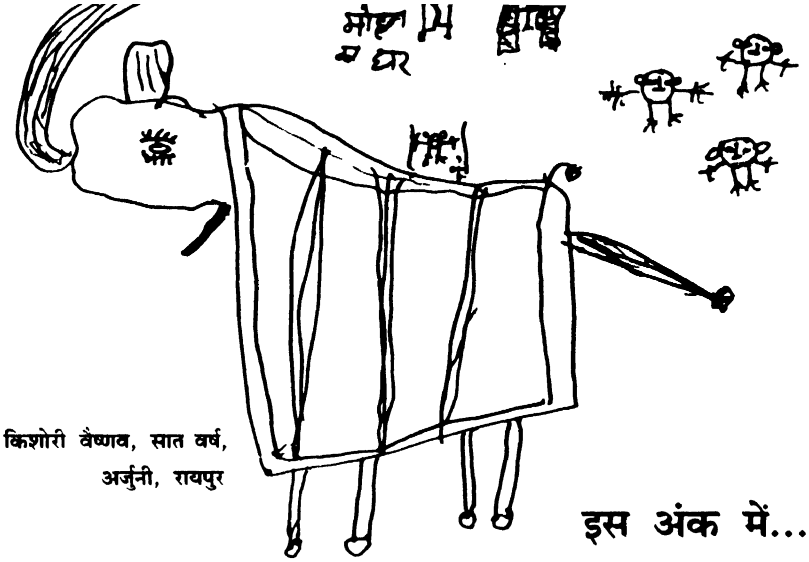

किशोरी वैष्णव, सात वर्ष,
अर्जुनी, रायपुर

इस अंक में...

विशेष

9 ☐ नाटक : विज्ञान की अदालत में मानसून

39 ☐ ॠतु वर्मा : किशोर प्रतिभा का नया हस्ताक्षर

कविताएं

8 ☐ जी होता चिड़िया बन जाऊं

20 ☐ धरती

कहानियां

18 ☐ पतंग

24 ☐ जिज्ञासा

हर बार की तरह

3 ☐ मेरा पन्ना

7 ☐ तुम भी बनाओ

17 ☐ खेल काग़ज़ का

22 ☐ दुनिया पक्षियों की

26 ☐ अपनी प्रयोगशाला

34 ☐ माथा पच्ची

धारावाहिक

28 ☐ भूगर्भ की यात्रा - 14

37 ☐ गुदड़ीलाल के कारनामे

और यह भी

2 ☐ पाठक लिखते हैं

23 ☐ सवालीराम

32 ☐ चित्रकथा : अक्ल बड़ी कि भैंस!

36 ☐ दर्पण के संग खेलो

आवरण फोटो : विनोद रायना

चकमक बाल विज्ञान पत्रिका
वर्ष-6 अंक-4 अक्टूबर 1990
संपादक
विनोद रायना
सह-संपादक
राजेश उत्साही
कला
जया विवेक
उत्पादन/वितरण
हिमांशु बिस्वास, कमलसिंह

चकमक का चंदा
एक प्रति: चार रुपए
छमाही : बीस रुपए
वार्षिक . चालीस रुपए
डाक खर्च मुफ़्त
चंदा, मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट से एकलव्य के नाम पर भेजें।
कृपया चेक न भेजें।

पत्र/चंदा रचना भेजने का पता
एकलव्य,
ई-1/208, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल-462 016 (म.प्र.)
फोन : 61380

काग़ज़ : 'यूनिसेफ' के सौजन्य से।
सहयोग : राष्ट्रीय विज्ञान व प्रौद्योगिकी संचार परिषद (विज्ञान व प्रौद्योगिकी विभाग, नई दिल्ली)

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो शिक्षा, जनविज्ञान एवं अन्य क्षेत्रों में कार्यरत है। चकमक, एकलव्य द्वारा प्रकाशित अव्यवसायिक पत्रिका है। चकमक का उद्देश्य बच्चों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, कौशल और सोच को स्थानीय परिवेश में विकसित करना है।

पाठक लिखते हैं

सुझाव ही सुझाव

सृजन अंक में मेरी रचना (चित्र) प्रकाशित हुई थी। उसके उपहार स्वरूप आपके द्वारा भेजी किताबें मिलीं। पहले मुझे चकमक लायब्रेरी से लेकर पढ़नी पड़ती थी। अब मुझे यह घर पर ही प्राप्त होगी, जानकर खुशी हुई।

मैं 1985 से चकमक नियमित रूप से पढ़ रहा हूं। कविताएं, अपनी प्रयोगशाला, खेल खेल में, सवालीराम, धारावाहिक, नाटक, माथापच्ची काफ़ी अच्छी लगती हैं। कहानियां अच्छी लगती हैं, क्योंकि यह राजा-रानी या साधु आदि की नहीं होतीं। फिर भी आपको पाठकों द्वारा भेजी गई कहानियों को भूल सुधार करके ही प्रकाशित करना चाहिए। कई पाठक तो अपने साथ घटी हुई घटनाओं को ही भेज देते हैं। आपको इन घटनाओं को थोड़ा रोचक बनाकर ही प्रस्तुत करना चाहिए।

माना कि आप पाठकों के मौलिक चित्र ही प्रकाशित करते हैं। यह एक अच्छा प्रयास है मौलिकता जगाने का। परंतु आपको अच्छे चित्र ही चुनकर प्रकाशित करने चाहिए। यह भी दुःख की बात है कि सिर्फ़ आवरण ही रंगीन होता है। आपको कम से कम चार और पृष्ठ रंगीन करने चाहिए।

चकमक में आपको कुछ नए स्तंभ भी शुरू करने चाहिए, जैसे चीज़ें कैसे काम करती हैं? हर महीने किसी न किसी रुचि के बारे में जानकारी देनी चाहिए। आपको प्रतिवर्ष 'सृजन' जैसा आयोजन करना चाहिए। अभी तक सिर्फ़ दो ही इस तरह के आयोजन हुए हैं, जिनमें पाठकों को अपना कौशल दिखाने का मौका मिला है।

☐ **आशुतोष शर्मा, भोपाल**

'सृजन' अंक मिलते ही उसे पूरा शुरू से आखिर तक पढ़ गया। ख़ास तौर पर इस अंक के लिए बधाई स्वीकारें!

☐ **इरफ़ान, कला संपादक, समकालीन जनमत, पटना**

चकमक पत्रिका एक बहुत रोचक व ज्ञानवर्धक है। मैं इसे बड़ी लगन से पढ़ता हूं। इसमें बच्चों तथा बड़ों के लिए बहुत ही अच्छी सामग्री पेश की जाती है। ख़ासकर इस पत्रिका में हर बार एक नए पक्षी के बारे में जानकारी देना बहुत अच्छा लगा।

☐ **पवन शर्मा, कनापुरी, श्यौरपुरकलां**

जैसे ही यह पत्रिका प्राप्त होती है गांव के सहपाठी पढ़ने के लिए ले जाते हैं और दूसरों को दे देत हैं, और मैं सबसे अंत में ही पढ़ पाता हूं।

☐ **सुरेशचंद्र यादव, रामनगर उपधान, जौनपुर**

आपकी पत्रिका विज्ञान को नीरस समझकर इसमें रुचि नहीं लेने वाले बच्चों को भी विज्ञान के विशेष ज्ञान के लिए प्रेरित करती है। आपको पत्रिका में गुदड़ीलाल, चलते-फिरते तथ्य, तुम भी बनाओ, मेरा पन्ना तथा भृगर्भ की यात्रा प्रशंसनीय है।

☐ **अश्विनी पंडित, संजीव पंडित, समस्तीपुर (बिहार)**

वास्तव में यही एक मात्र पत्रिका है जो पढ़ने के बाद प्रयोग करने को भी बाध्य करती है। मुझे जुलाई, अगस्त के अंक अच्छे लगे।

☐ **आदेश सक्सेना, इटावा**

चकमक बच्चों के कोमल मस्तिष्क में चकमक पत्थर की तरह ज्ञान की चिंगारी पैदा करती है।

☐ **रोमेश शर्मा, टीकमगढ़**

चकमक का मुझे हर माह बेसब्री से इंतजार रहता है। इसी पत्रिका के माध्यम से मैं अपने साथियों पर, जो चकमक से अपरिचित हैं, रौब जमाता हूं। पिछले चंद महीनों में मेरी विज्ञान विषयक जानकारी खूब बढ़ी है।

☐ **आशीष आचार्य, गाडरवारा**

चकमक एक ऐसी पत्रिका है जो ज्ञान-विज्ञान के अलावा अनेक प्रयोग तथा अनेक उपकरण बनाना भी सिखाती है।

☐ **सियाराम यादव, बीकापुर**

संपादक लिखते हैं...

हमें बहुत से पाठक पत्र लिखकर पूछते हैं कि क्या वे अपनी रचनाएं, चित्र चकमक में भेज सकते हैं? अगर हां, तो कैसे भेजें? प्रकाशन के लिए क्या कोई पैसा लगता है? आदि आदि!

हमारी कोशिश होती है कि हम तुम्हारे पत्रों के जवाब ज़रूर दें! पर कुछ सामान्य बातें यहां बताना चाहते हैं।

— *कोई भी पाठक चकमक में अपनी रचना, चित्र आदि भेज सकता है। रचना प्रकाशित होगी या नहीं, इसका निर्णय तो रचना देखकर ही लिया जा सकता है।*

— *रचनाओं के प्रकाशन के लिए कोई पैसा नहीं लिया जाता है।*

— *जिन रचनाओं का प्रकाशन संभव नहीं है उन्हें तभी लौटाया जा सकता है, जब उनके साथ जवाबी लिफ़ाफ़ा, पर्याप्त डाक टिकट लगा हुआ हो।*

— *रचनाएं लिफ़ाफ़े, कार्ड, अंतर्देशीय आदि पर भेजी जा सकती हैं।*

— *हर प्रकाशित रचना के लेखक या चित्रकार को छह माह तक चकमक मुफ़्त भेजी जाती है।*

अगर गुरुजी न मारते!

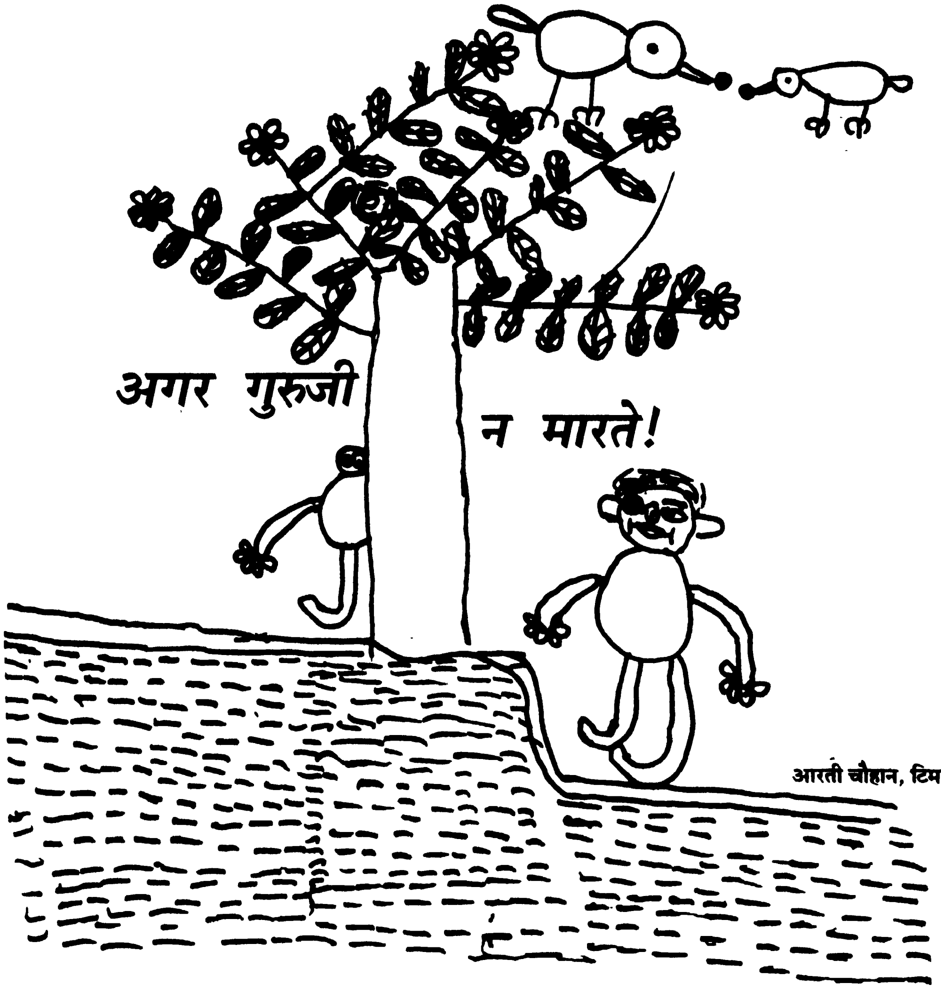

आरती चौहान, टिमरनी

जब मैं कक्षा पांचवीं में पढ़ता था और छोटा भाई चौथी में था। हम दोनों साथ-साथ स्कूल जाते थे।

स्कूल और हमारे घर के रास्ते में एक इमली का पेड़ था। लड़के उस पर चढ़कर इमलियां तोड़कर खाया करते थे।

हमारे विद्यालय में हर शनिवार बालसभा का आयोजन होता था। बालसभा में सभी छात्र-छात्राओं का बोलना आवश्यक होता था। उस रोज हमें याद नहीं था और बालसभा बैठ गई थी। गुरुजी का आना बाकी था। तभी मैंने और मेरे भाई ने प्लान बनाया कि अगर आज कुछ कविता या भाषण अपन ने नहीं बोला तो गुरुजी की मार खानी पड़ेगी। बस यह सोचकर हम दोनों भाई और कुछ दोस्त बालसभा से उठकर भाग गए।

हम लोग इमली के पेड़ के नीचे जमा हो गए। सबसे पहले मैं चढ़ा, फिर छोटा भाई फिर सभी दोस्त प्यारी-प्यारी, खट्टी-मिट्ठी इमली खाने को चढ़ गए।

थोड़ी इमली खाई और फिर एक डाल पर से दूसरे डाल पर कूदने लगे। अचानक मेरा पैर फिसल गया। मैं घबराने लगा और घबराहट में मेरे हाथ भी छूट गए। डालियों में से अटकता हुआ जमीन पर जा गिरा। मेरे हाथ-पैर टूट गए। मेरे सभी दोस्त वहां से उतरकर रफू चक्कर हो गए। मैं रोता-चिल्लाता वहीं पड़ा रहा।

दोस्तों ने घर की बजाए स्कूल जाकर कक्षाध्यापक को बताया। अध्यापक जी मुझे उठाकर तुरंत अस्पताल ले गए। और मैं दो माह बाद ठीक हो पाया।

अगर गुरुजी न मारते तो न भागते न गिरते।

☐ विनोद कुमार परमार, दसवीं, रामा, झाबुआ

मास्टरजी का चश्मा छुपाया

मैं स्कूल में बहुत गदर करती थी। मुझको गदर करने में मज़ा आता था। एक बार हमारे सर ने कुछ लिखवाया पर मैंने वह नहीं लिखा।

जब सर ने सबकी कापियां देखने को मांगी तो मैं घबराई। पर मैं तो शरारती लड़की थी। मेरी बारी आई। मैं सर के पास कापी लेकर चली गई। मेरी कापी देखकर सर ने मुझसे कहा, कहां लिखा है। मेरे को एक तरकीब आई। मैंने कहा, सर आप अपना चश्मा ठीक करिए। सर ने अपना चश्मा उतारकर टेबिल पर रख दिया। उनको बिना चश्मे के ठीक से नहीं दिखाई देता था।

मैंने उनको दूसरा पाठ बता दिया। वह पाठ उनकी समझ में नहीं आया, तो वे चश्मा लगाने लगे। मैंने उनका चश्मा उठाकर छुपा लिया। सर ने पूछा मेरा चश्मा किधर गया। उनको चश्मा नहीं मिला। तो फिर उन्होंने कहा, अच्छा तो आज छुट्टी करते हैं। मैं अपनी कापी दिखाने से बच गई। मैं दूसरे दिन लिखकर ले आई।

□ राजेन्द्र शर्मा, सुलतानपुर, रायसेन

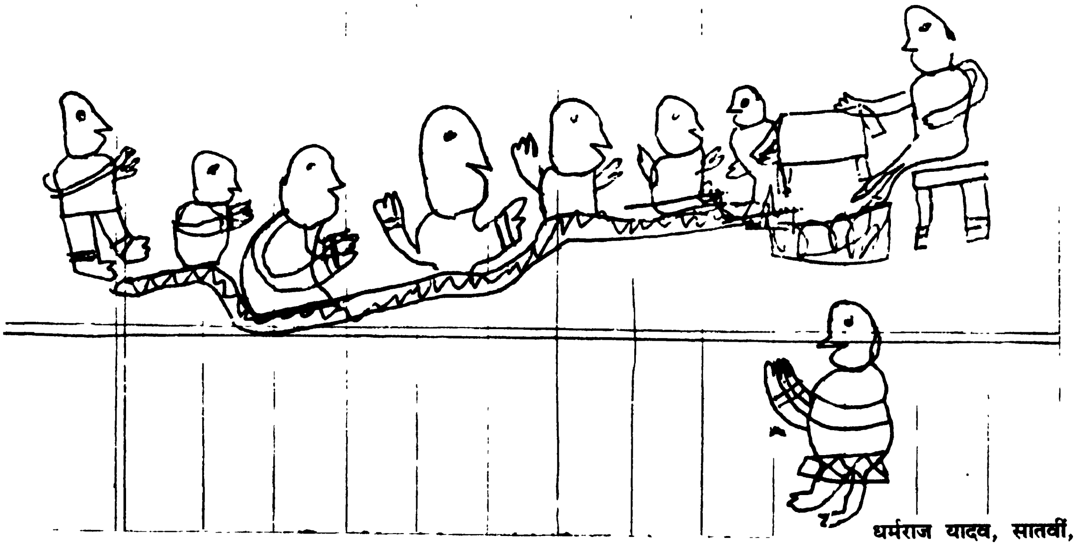

धर्मराज यादव, सातवीं, पांचारुंडी

मैंने तैरना सीखा

एक दिन मैं अपने दोस्तों के साथ नदी में नहाने गया। मुझे तैरना नहीं आता था। मैंने अपने दोस्त सतीश से कहा, मुझे तैरना सिखा दो।

सतीश ने कहा, दो-तीन बार गोता लगाओ तब तैरना सीख जाओगे। मैंने कहा, और मुझे गोता लग गया तो कौन बचाएगा। सतीश ने कहा, हम किसलिए हैं।

मैं नदी में कूद गया। जब डूबने लगा तो सतीश ने कहा, हाथ पैर चलाओ। बस ऐसे ही करके धीरे-धीरे मैं तैरना सीख गया।

□ प्रशांत कुलश्रेष्ठ, आठवीं
तिलोंजरी, मुरैना

झूले वाला दोस्त

मैं तीसरी कक्षा में पढ़ता था। नया-नया स्कूल में भरती हुआ था। मेरे साथ फूलसिंह नाम का लड़का भी पढ़ता था। वह तीसरी कक्षा में फेल हो चुका था। फिर भी वह बहुत शैतानी करता था।

मैं पढ़ने में अच्छा था, इसलिए मुझे ज़्यादा तंग करता था। मैं उससे बात भी नहीं करना चाहता था, फिर भी वह मेरे पास आ जाता।

उसके पिताजी बिजली का झूला चलाते थे। एक दिन मैं अपने माता-पिता के संग मेले में गया। वहां उसने मुझे देखा। उसने आवाज़ लगाई। उसने कहा, झूला-झूलोगे। मैंने कहा, हां!

फिर मैं झूला झूलने लगा। फिर उसे पैसे देने लगा तो उसने नहीं लिए। उस दिन से हम गहरे दोस्त बन गए।

☐ हेमंत अग्रवाल, सातवीं, रतलाम

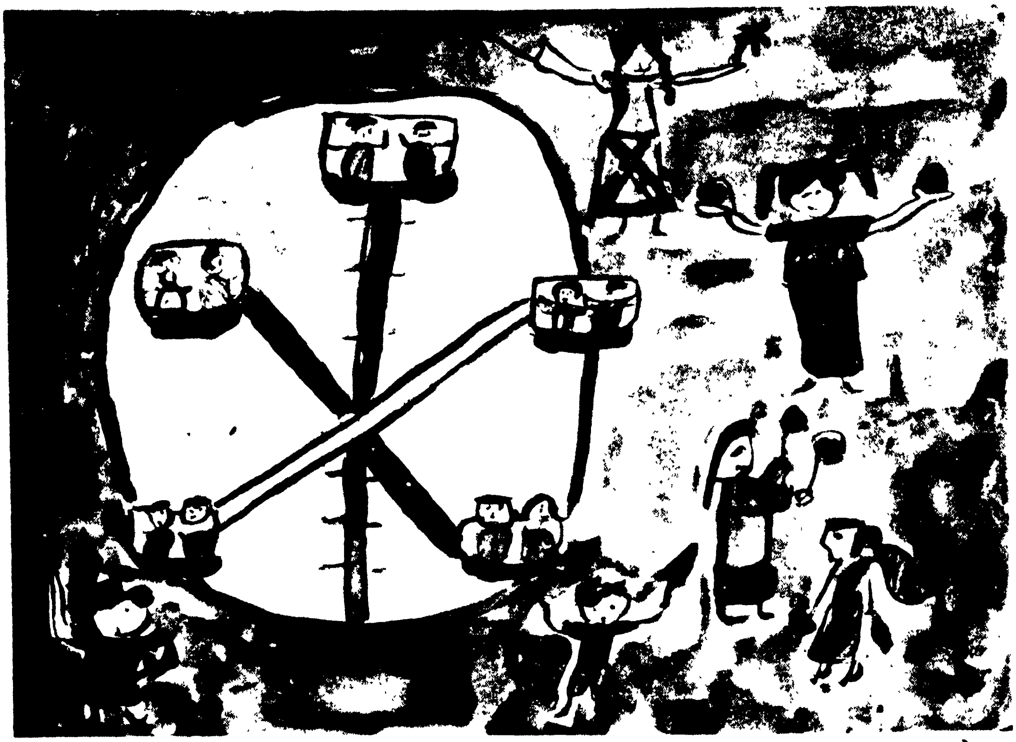

चारू अग्रवाल, भोपाल

क्या होगा?

गांवों में लड़कियों को पढ़ाना अच्छा नहीं समझा जाता है। लड़कियों को लोग सिर्फ़ कार्य के लिए समझते हैं। लड़कों को मां-बाप प्यार व लाड़ दुलार करते हैं, पढ़ने भी भेजते हैं।

जिस प्रकार लड़कों का पढ़ना ज़रूरी है उसी प्रकार लड़कियों का भी पढ़ना ज़रूरी है।

हमारे गांव में एक उषा नाम की लड़की थी। उसका एक भाई था, मोहन। उसके पिताजी सिर्फ़ मोहन को ही प्यार करते थे। मोहन को स्कूल भेजते थे। उषा का पढ़ने का मन बहुत था। पर उसके माता-पिता उसे स्कूल की बजाए जानवरों के

साथ जंगल भेजते थे। उषा को घर का काम भी करना पड़ता था। जब वह कुछ वर्षों बाद विवाह योग्य हुई तो अनपढ़-ज़ाहिल कहकर कोई भी उसके साथ विवाह करने को तैयार नहीं हुआ।

☐ अमित ठाकुर

जया जेम्स, धार

हमारे रचनाकार

सत्रह वर्षीय शिवेंद्र एक उभरते हुए कार्टूनिस्ट हैं। कार्टून बनाने की शुरूआत शिवेंद्र ने आठ साल की उम्र में की थी। पहला कार्टून चकमक में ही, 'चकमक लिखाई से छपाई तक' लेख (अक्टूबर, 86) के साथ प्रकाशित हुआ था। तब से अब तक चकमक में कार्टून, चित्र तथा कहानी आदि प्रकाशित होते रहे हैं। इस अंक में शिवेंद्र की बनाई एक चित्र कथा 'अक्ल बड़ी कि भैंस ...!' प्रकाशित हुई है।

चकमक के अलावा शिवेंद्र की रचनाएं दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, दैनिक नवभारत, शिखरवार्ता, समझ झरोखा आदि पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं।

शिवेंद्र की कार्टून बनाने के अलावा पत्रकारिता में गहरी रुचि है। लेकिन भविष्य में वह वकील बनना चाहता है।

शिवेंद्र को पत्र-दोस्त बनाने में भी मज़ा आता है। चाहो तो तुम भी पत्र लिखो। पता है—

शिवेंद्र पांडिया
द्वारा डॉ. बी.व्ही. पांडिया
जी-2/231, ग्यारह सौ क्वार्टर्स,
भोपाल, (म.प्र.)

तुम भी बनाओ

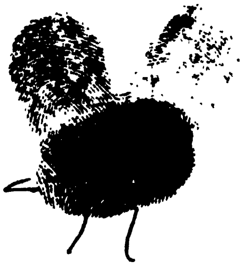

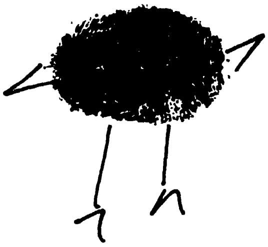

अब तक तुमने इस कालम में पक्षियों, जानवरों आदि के चित्र बनाए। और ये चित्र भी पेंसिल, पेन आदि से बनाए होंगे। इस बार एक नया तरीका देखो - तुम्हें मज़ा आएगा।

अपने हाथ की किसी एक उंगली के सिरे को 'इंक पेड' (जिसका उपयोग आमतौर पर आफ़िसों में मुहर पर स्याही लगाने के लिए होता है) पर मुहर की तरह लगाओ और फिर काग़ज़ पर इसकी छाप बनाओ। बस अब यहां दिए चित्र देखो और बनाओ। फूल के डंठल, तितलियों के पैर, मानव आकृतियों के हाथ-पैर पेंसिल या पेन से बना सकते हो।

हां, यह ज़रूरी नहीं है कि पैड इंक से ही ऐसे चित्र बनेंगे। फूलों की पंखुड़ियां, पत्तियों आदि को मसलने पर उंगुलियों में जो रंग लग जाता है उससे भी बना सकते हो। इसके अलावा और तरीके खोजना तुम्हारा काम है!

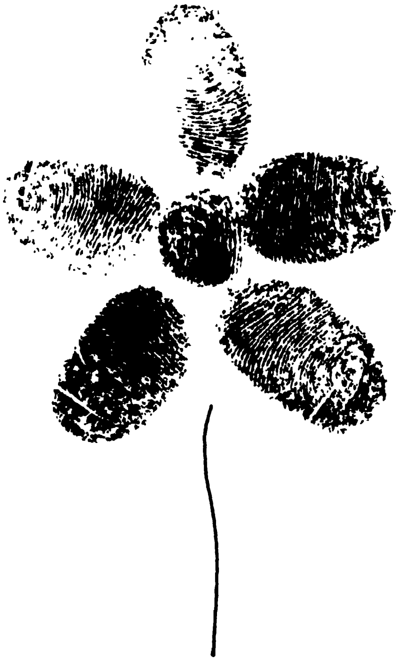

जी होता चिड़िया बन जाऊं

जी होता, चिड़िया बन जाऊं।
मैं नभ में उड़कर सुख पाऊं।

मैं फुदक फुदक कर डाली पर,
डोलूं तरु की हरियाली पर!
फिर, कुतर कुतरकर फल खाऊं,
जी होता, चिड़िया बन जाऊं।

कितना अच्छा इनका जीवन,
आज़ाद सदा इनका तन मन!
मैं भी इन सा गाना गाऊं,
जी होता, चिड़िया बन जाऊं।

जंगल जंगल में उड़ विचरूं,
पर्वत घाटी की सैर करूं!
सब जग को देखूं इठलाऊं,
जी होता, चिड़िया बन जाऊं!

कितना स्वतंत्र इनका जीवन,
इनको न कहीं कोई बंधन!
मैं भी इनका जीवन पाऊं,
जी होता, चिड़िया बन जाऊं।

☐ सोहनलाल द्विवेदी

चित्र : रूबीना

नाटक

विज्ञान की अदालत में मानसून

(परदे के पीछे से आवाज़ आती है) प्राचीन काल से ही मनुष्य सत्य और ज्ञान की खोज में रहा है। वह सदैव प्राकृतिक पदार्थों और प्राकृतिक प्रक्रियाओं के रहस्यों को जानकर अपने जीवन को अधिकाधिक सुविधायुक्त बनाने का प्रयत्न करता आ रहा है। इसके लिए उसने घटनाओं का अवलोकन किया। उनके अनुसार सिद्धांत प्रतिपादित किए और सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में घटनाओं का पुनः अवलोकन किया। इन अवलोकन जन्य सिद्धांतों के विकास ने अनजाने ही विज्ञान को जन्म दे दिया। विज्ञान और तकनीक एक दूसरे के पूरक हैं। आज ये सम्राट की तरह हैं जिनका साम्राज्य संपूर्ण ब्रह्मांड में अखण्ड रूप से स्थापित है। मनुष्य और समाज में रहने वाला प्रत्येक प्राणी इस सम्राट के समक्ष विभिन्न प्रकार से याचनाएं करता दिखायी देता है। एक हाहाकार-सा मचा हुआ है।

[शोर मच रहा है, परदा उठता है]

मनुष्य : महाराज! आप हमारी यह दशा देख रहे हैं! क्या यह दशा देखकर आपका हृदय ज़रा भी नहीं पसीजता?

विज्ञान (सम्राट) : क्या कहना चाहते हो?

मनुष्य : ***(झुककर)*** गरीब परवर! आपके सिंहासनारूढ़ होने पर हममें बड़ी आशाऐं जगीं थीं। आपके साथी तकनीक ने हमें बड़ी दिलासा दी थी!

सम्राट : तोऽऽ! तुम्हारी आशाओं की पूर्ति के लिए हमने सारे प्रयत्न कर तो रखे हैं! सभी लोग तुम्हें सुखी बनाने के लिए अपना-अपना काम कर रहे हैं!

मनुष्य : ***(याचना के स्वर में)*** नहीं महाराज! यह पूरी तरह से सच नहीं है!

सम्राट : ***(क्रोध से)*** क्या कह रहे हो? मेरे राज्य के कर्मचारी-गण क्या अपना-अपना कर्त्तव्य-पालन नहीं कर रहे हैं?

मनुष्य : ***(कांपते हुए)*** नहीं महाराज! आप मुझे समझने की कोशिश कीजिए! अभयदान दें हुज़ूर!

सम्राट : बोलो, अभयदान दिया जाता है!

मनुष्य : महाराज! हमारे समाज को बचाइए। अपनी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए जिस प्रकार आप हमसे अपेक्षाएं करते हैं। उसी प्रकार हम भी चाहते हैं...!

सम्राट : क्यों? अभी तक तो मुझे किसी भी प्रकार की शिकायत नहीं मिली है? सुख और शांति का जो साम्राज्य छाया हुआ था उसमें यह अशांति अचानक क्यों उत्पन्न हो उठी है?

मनुष्य : महाराज! आप वस्तु-स्थिति समझने का प्रयत्न करें। देश में अमीरी व ग़रीबी के बीच खाई बढ़ती ही जा रही है। उत्पादन का बंटवारा ग़ैर बराबर है। अमीर और अधिक अमीर तथा ग़रीब और अधिक ग़रीब होते जा रहे हैं। हमारी आबादी भी बढ़ रही है—ऐसे में आने वाले समय में क्या स्थिति होगी, कल्पना कीजिए!

सम्राट : ***(ठोढ़ी पर हाथ रखकर)*** हूंऽ ऽ ऽ! तो इसके लिए हम लोग क्या कर सकते हैं?

मनुष्य : महाराज! यदि आप ही इस प्रकार से हमें निराश करेंगे तो हमारा तो अस्तित्व ही ख़तरे में पड़ जाएगा!

सम्राट : मेरा मतलब समझने की कोशिश करो। मेरे साम्राज्य में कोई भी दुःखी नहीं रहेगा, हमने ऐसा संकल्प किया है!

[थोड़ी देर शांति छाई रहती है]

मनुष्य : महाराज! आपके राज्य में लोग हमें इतना सताएंगे-ऐसी अपेक्षा नहीं की थी।

सम्राट : चिंता मत करो मैं अभी प्रबंध करता हूं। मंत्री! इनकी मांगों को नोट करो और उत्पादन विभाग के सभी कर्मचारियों को मेरे समक्ष उपस्थित करो ताकि वास्तविक स्थिति का पता चल सके! बाकी लोगों से हम बाद में निपटेंगे।

मंत्री : जो आज्ञा!

[सिर झुकाकर जाता है। थोड़ी देर बाद दो सिपाहियों द्वारा भूमि को पेश किया जाता है]

मंत्री : महाराज! उत्पादनाध्यक्ष भूमि उपस्थित हैं!

सम्राट : मंत्री! तुम्हें मानव-कल्याण की दृष्टि से कार्य करने को कहा गया था!

भूमि : जी श्रीमान्!

सम्राट : फिर, मानव को इतना कष्ट क्यों मिल रहा है? यह क्या तुम्हें नहीं मालूम है?

भूमि : मालूम है श्रीमान्! निरंतर उपयोग करते-करते मेरी उर्वराशक्ति समाप्त प्रायः है। मेरा हरा भरा आवरण इस मानव ने पूर्णतः नष्ट-भ्रष्ट कर डाला है। मेरी प्यास किसी भी प्रकार से नहीं बुझ पाती और उत्पादन विभाग के जितने भी कर्मचारी हैं। वे अपने-अपने कर्त्तव्यों से विमुख हो गए हैं। अब वे आपको ही सब कुछ मानने के कारण मेरी सुनना ही नहीं चाहते। प्रशासन में ऐसा ही होता है। इस संबंध में आपकी ओर रिपोर्ट भी प्रेषित की जा चुकी है। देखिए ***(कागज़ मंत्री के हाथ में देती है)।***

सम्राट : मंत्री! भूमि की रिपोर्ट देखकर बताओ कि इन्हें क्या कठिनाई है?

मंत्री : ***(पढ़ते हुए)*** महाराज, खाद का काम असंतोषप्रद है। उसने अपने आचरण द्वारा भूमि को नाराज़ कर रखा है!

सम्राट : खाद को प्रस्तुत किया जाए!

[सिपाही भूमि को ले जाते हैं। कुछ समय बाद खाद का प्रवेश]

सम्राट : खादाधिराज! उत्पादनाध्यक्ष की ओर से तुम्हारे ख़िलाफ़ एक रिपोर्ट मुझे मिली है। क्या इसके संबंध में तुम कोई स्पष्टीकरण देना चाहते हो? यदि नहीं तो आचरण-संहिता के अनुसार क्यों न तुम्हारे विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही की जाए? रिपोर्ट की कॉपी तुम्हें मिल चुकी होगी?

खाद : जी महाराज! मगर मेरी कोई ग़लती नहीं है। मैं अपना काम जिस लगन और निष्ठा से कर रहा हूं, उसे मेरा विभाग अच्छी तरह जानता है। मेरे सभी घटक पहले प्रकृति में सामान्य रूप से निर्मित होते थे, पर अब फैक्ट्री में बन-बन कर प्रचुर मात्रा में भूमि की उर्वरा-शक्ति बढ़ाने में लगे हुए हैं। मैंने अपने तीन और सहयोगियों को यह काम बांट रखा है। हमारी भूमि को तीन तत्त्व चाहिए—फास्फोरस, नाइट्रोजन और पोटेशियम। इन तीनों की व्यवस्था के लिए तरह-तरह की फैक्ट्रियां उर्वरक बनाकर भूमि को हमारे रूप में दे रही हैं। वे जिन-जिन आवश्यकताओं के प्रस्ताव हमारे समक्ष रखते हैं। हम उसे पूरा किए जा रहे हैं। यहां तक कि अनुपयोगी पदार्थों को भी हम प्रयुक्त करते हुए मानव को सस्ती एवं उपयोगी वस्तु प्रदान करते हैं!

सम्राट : ठीक है खाद! तुम अपनी ओर से पूरी कोशिश करो। हम देखते हैं कि और क्या किया जा सकता है।

खाद : महाराज! एक बात और, आजकल वायु में अनेक प्रदूषण स्थापित हो गए हैं। मैंने अपने बॉस से कहा भी था कि उनकी ओर यदि ध्यान दिया जाए तो एक बड़ी समस्या दूर हो जाएगी!

सम्राट : प्रदूषण की क्या समस्या है मंत्री?

मंत्री : महाराज! प्रदूषण मानव-सभ्यता को निगल जाने के लिए तत्पर दिखाई देता है। संसाधनों के अनुचित उपयोग द्वारा जीवमंडल में निरंतर ज़हर उगलने की प्रक्रिया ज़ारी है। विभिन्न देशों के बीच प्रगति के लिए होने वाली पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा के फलस्वरूप अत्यंत तीव्र गति से होनी वाले औद्योगीकरण ने प्रदूषण की समस्या को और गंभीर बना दिया है।

सम्राट : इसके लिए क्या किया जा सकता है? मंत्री!

मंत्री : ***(केवल देखता रहता है)***....!

सम्राट : ***(मनुष्य से)*** तुमने कुछ सोचा है इस बारे में?

मनुष्य : हां महाराज! दूषित पदार्थों को उनके स्रोतों के स्तर पर ही यदि प्रभावशाली विधियों से दूर किया जा सके और उन पदार्थों को लाभदायक ढंग से अन्य वस्तुओं के निर्माण में उपयोग किया जा सके तो उससे हानि की संभावना कम हो सकती है!

सम्राट : मंत्री! ऐसा ही किया जाए!

मनुष्य : महाराज! मेरी मूल समस्या तो ज्यों की त्यों ही है अभी तक!

सम्राट : ओफ़! खाद! तुम्हें कुछ और कहना है?

खाद : श्रीमन्! आप देख ही रहे हैं कि मेरी ओर से कोई कमी नहीं है। कमी है तो जल की, जो उपयुक्त समय पर नहीं मिल पाता!

सम्राट : जल? जल से तुम्हारा क्या संबंध है?

खाद : महाराज! जल ही तो सब कुछ है, वही तो जीवन है। उसके बिना तो किसी की भी गति नहीं है महाराज! उत्पादन तो जल की ही बदौलत है!

सम्राट : मंत्री! जल को उपस्थित करो! खाद तुम जाओ!

[खाद एवं मंत्री जाते हैं। कुछ समय बाद सिपाही जल को लेकर प्रवेश करते हैं। भीगे कपड़ों में जल।]

सम्राट : वाह, वाह! क्या कहने! स्वार्थी!

जल : ***(पैरों पर गिरकर)*** महाराज! कसूर माफ़ हो!

सम्राट : स्वयं जल का पान कर रहे हो, तुम्हारी व्यवस्था क्या इसीलिए की गई थी? उत्पादन विभाग के प्रति तुम्हारी यह उदासीनता? मानव आज तुम्हारे कारण त्राहि-त्राहि कर रहा है और मेरी प्रतिष्ठा धूल में मिल रही है!

जल : महाराज! अपराध माफ़ हो! मैं बिल्कुल बेकसूर हूं! मैं तो स्वयं प्रयत्नशील था कि मानव की निःस्वार्थ सेवा करूं!

सम्राट : फिर कौन-सी अड़चन आ गई?

जल : यही मानव ही, मेरी तोहीन करने पर तुला हुआ है!

सम्राट : क्या बकते हो?

जल : हां महाराज! इस मानव ने हरे भरे जंगल काट दिए, जो वर्षों से मेरा अस्तित्व थे, वह नष्ट करने पर उतारू हो गया। हमारी व्यवस्था में इसी ने दखलंदाज़ी की और अपनी ग़लती स्वीकार न कर आपके सामने हमारे विभाग को बदनाम करने के लिए उपस्थित हुआ है! आज का मानव हो ही गया है ऐसा, कि या तो वह अपनी गलती स्वीकारता ही नहीं और या फिर व्यर्थ में दूसरों पर दोष लगाकर अपनी गलती पर पर्दा डालने का प्रयत्न करता है!

सम्राट : *(नाराज़गी के स्वर में)* क्यों, मानव?

मनुष्य : नहीं महाराज! आपको बर्गलाया जा रहा है। इस जल के साथ मानसून (मौसम) मिला हुआ है। चोर-चोर मौसेरे भाई की तरह ये दोनों सारे उत्पादन को तहस-नहस किए जा रहे हैं कहीं तो वह ओले बरसाता है, तो कहीं बिल्कुल सूखा छोड़ देता है। कहीं बाढ़ का प्रकोप उत्पन्न करता है तो कहीं-कहीं कम जल भेजता है। लगता है मानसून ने ही सिखा-पढ़ाकर भेजा है।

सम्राट : मंत्री! मानसून कौन है?

मंत्री : महाराज! हमारे देश में मानसून एक दूसरा सम्राट है! वह आपकी तरह ही इस देश पर शासन कर रहा है!

सम्राट : क्याऽऽ! एक राज्य में दो सम्राट! यह कैसे हो सकता है?

मंत्री : ऐसा ही है महाराज! यह सम्राट तो लगता है इस देश में उत्पादन के क्षेत्र में आपसे भी कहीं अधिक शक्तिशाली है।

सम्राट : मेरे सामने ही मेरा अपमान!

मंत्री : नहीं महाराज! हक़ीकत बयान कर रहा हूं! सत्य बात कहना हमारे देश की परंपरा रही है!

मंत्री : यह असंभव है श्रीमन्!

सम्राट : मंत्री! तुम्हें मालूम है कि असंभव शब्द सुनने की आदत विज्ञान सम्राट को नहीं है! मानसून को उपस्थित किया जाए—ज़िंदा या मुर्दा।

मंत्री : जो आज्ञा महाराज! ***(निराशा से सिर झुकाकर जाता है।)***

[थोड़ी देर बाद वापस आता है]

सम्राट : क्यों मंत्री! कार्यवाही आरंभ कर दी?

मंत्री : जी महाराज! तेज़ गति के राकेट भेज दिए है। रोहिणी, भास्कर, एपल, इंसेट सब मानसून को पकड़ने के लिए भेज दिए गए हैं! शीघ्र ही हमारे सिपाही सूचना भेजेंगे।
(फोन की घंटी बजती है)

मंत्री : ***(फोन उठाकर)*** हलो! हलो!! मैं विज्ञान सम्राट का मंत्री बोल रहा हूं।

स्वर : मैं इंसेट-एक से बोल रहा हूं!

मंत्री : एक मिनट ***(सम्राट को फोन थमाते हुए)*** इंसेट एक का फोन है, महाराज!

सम्राट : ***(रिसीवर कान से लगाए सुनते हैं)*** महाराज, मैं इंसेट एक बोल रहा हूं। मानसून की कुछ कुछ झलक दिखाई दे रही है और शीघ्र उसके पास पहुंचने की कोशिश में हूं...
(रिसीवर रख देते हैं और प्रसन्नता से मुख चमकने लगता है, फिर फोन की घंटी बजती है और सुनते हैं—)
महाराज, मैं एपल बोल रहा हूं। हमारे जासूसों ने यह खबर दी है कि मानसून कहीं पर बाढ़ तो कहीं पर सूखे की स्थिति निर्मित करने वाला है। अपने विभाग से हर स्थिति के लिए व्यवस्था करने का कष्ट करें।

सम्राट : ***(मंत्री की ओर देखकर)*** मंत्री शीघ्र व्यवस्था करो, संबंधित विभागों से संपर्क करो—बाढ़ और सूखे की स्थिति साथ-साथ आ रही है।

मंत्री : महाराज, हम तैयार हैं पर मानसून का प्रकोप इतने बड़े स्तर पर है कि उसका मुकाबला तुरंत संभव नहीं है!

सम्राट : हम 'नहीं' शब्द सुनने के आदी नहीं हैं मंत्री! हमारे कुशल इंजीनियरों, तकनीशियनों को सूचित करो कि वे मानसून को अपने नियंत्रण में लें। जगह-जगह बांध बनाकर, नलकूप लगवाकर मानव को कष्ट से छुटकारा दिलाने का प्रयत्न करें।

मंतरी : महाराज! इन सबके लिए ऊर्जा का विशाल भंडार चाहिए जिसकी साम्राज्य के ख़जाने में कमी है!

सम्राट : मंत्री! ऊर्जा की कमी कैसी? कोयला, सूर्य, परमाणु, शहर की गंदगी, कचरा, गोबर—सभी कुछ तो है, फिर ऊर्जा की कमी क्यों?

मंत्री : महाराज! ***(विवशता से देखता है)***।
(घंटी बजती है)
सम्राट फोन का रिसीवर कान से लगाते हुए सुनते हैं—महाराज! मैं एपल बोल रहा हूं। ख़बर है कि मानसून ओले बरसाने जा रहा है।

सम्राट : ओफ्फो! यह क्या हो रहा है? मानसून की यह क्या शरारत है! मंत्री! बीज विभाग से कहो कि ऐसे बीजों का निर्माण किया जाए जो ओले आदि से अप्रभावित रहें।

मंत्री : महाराज! ऐसे आदेश पूर्व में ही प्रसारित किए जा चुके हैं। शीघ्र ही व्यवस्था होने की संभावना है।

सम्राट : ठीक है, मानसून से निपटना ही होगा..!

[मानसून का प्रवेश]

मानसून : विज्ञान सम्राट! मानसून हाज़िर है! क्या निपटना चाहते हो? है कोई शक्ति तुम्हारे पास! तुम्हारे बड़े-बड़े बम शहरों को उजाड़ सकते हैं, मुझे नहीं, तुम मनुष्य को कठपुतली बना सकते हो, मुझे नहीं! तुम यंत्र मानव बनाकर कठपुतली की तरह उससे जो चाहे करा सकते हो, उत्पादन विभाग में तरह-तरह के परिवर्तन लाकर उसका रूप परिवर्तन कर सकते हो, परंतु मेरा नहीं! है कोई शक्ति तुम्हारे पास? विज्ञान सम्राट—तुम मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते—अपने सिपाहियों से तुम मेरी ख़बर ज़रूर प्राप्त कर सकते हो, परंतु मुझे अपने कार्यों से रोकने की शक्ति अभी तुममें नहीं है—वह शक्ति एकत्रित करो फिर मुझसे आकर लड़ो... हःहःहः विज्ञान! तुम्हें मैं सम्राट केवल इसलिए संबोधित कर रहा हूं क्योंकि तुम महान हो लेकिन सर्वमहान तो तभी होगे जब मुझे भी जीत लो। हःहःहःहः....!

(अट्टहास का स्वर धीरे-धीरे कम होता जाता है और सम्राट सिर पर हाथ धरे हताश भाव से बैठा रह जाता है।)

[परदा गिरता है]।

☐ डा. श्यामकृष्ण मिश्र

सभी चित्र : बी. सावरकर

खेल काग़ज़ का

इस बार अख़बार से जाल बनाओ। इसे तुम रंग-बिरंगे काग़ज़ से भी बना सकते हो। इनका उपयोग घर को सजाने में भी कर सकते हो।

जितना बड़ा जाल बनाना चाहो, उस अनुपात में अखबार या काग़ज़ का टुकड़ा लो। यह ध्यान रहे कि वह वर्गाकार हो।

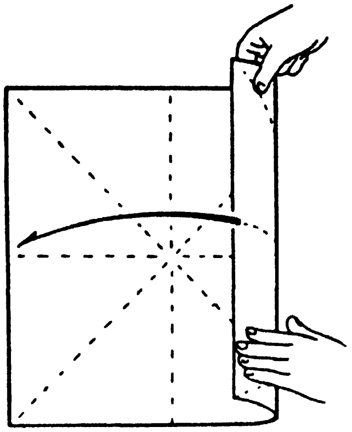
[1]

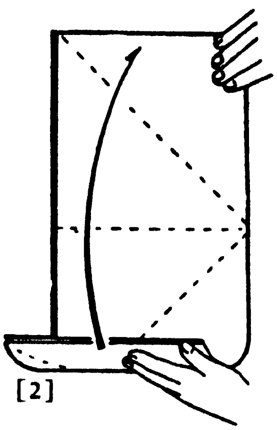
[2]

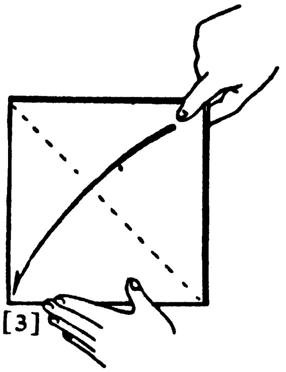
[3]

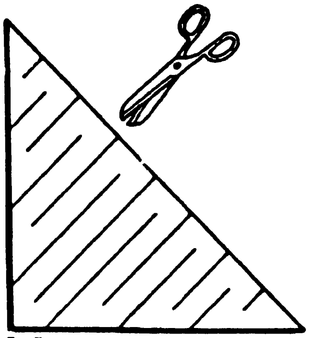
[4]

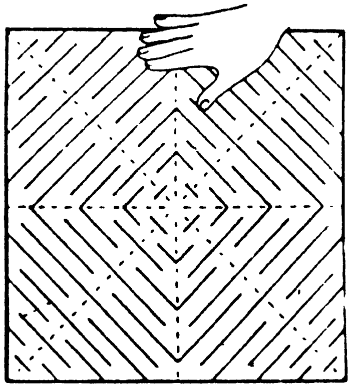
[5]

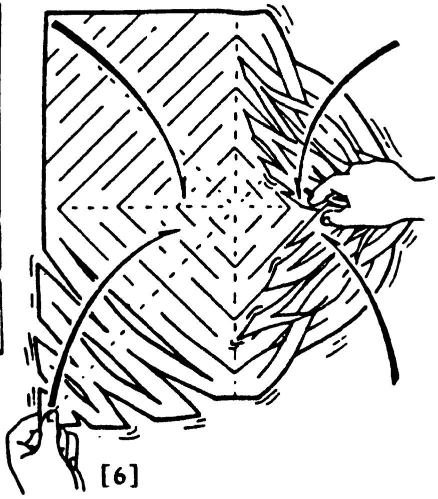
[6]

इसे रुमाल की तरह **चित्र 1-2** में दिखाए तरीके से दो बार मोड़ो। इस तरह एक चार सतह वाला वर्गाकार टुकड़ा बन जाएगा। अब इसके दो विपरीत कोनों को मिलाते हुए (**चित्र-3**) बीच से मोड़ो। काग़ज़ त्रिभुज की शक्ल में बदल जाएगा। अब इस त्रिभुज पर **चित्र-4** की तरह पेंसिल से रेखाएं खींचो। फिर सावधानी पूर्वक कैंची से इन रेखाओं पर **'कट'** लगाओ। अब काग़ज़ की सतहों को खोलकर फैलाओ (**चित्र-5**)। काग़ज़ के बीच एक छोटा कंकड़ रख दो और फिर चारों कोनों को एक साथ पकड़कर ऊपर उठाओ (**चित्र-6**)।

पतंग

अशोक कुमार, सातवीं, देवास

छज्जे की मुंडेर पर बैठा नन्हा दीपू बड़ी देर से कुछ ताक रहा था। उसकी आंखों में खुशी की चमक, कुछ पाने की ललक विद्यमान थी। नरम-नरम हथेलियों को नाजुक गाल पर रखे, उकड़ूं बैठा हुआ, कभी सारस की तरह गर्दन लंबी कर सामने सूनी सड़क को निहारता, कभी किसी को पुकारने की मुद्रा में घूमता... फिर कुछ सोचकर सड़क पर निहारने लगता।

ऐसा लगता था, मानो उसके मन में खुशी की तरंग कभी आ रही है तो कभी चली जा रही है।

आख़िरकर उससे रहा न गया और मुंडेर से नीचे गर्दन करके ज़ोर से किंतु मीठे स्वर में चिल्लाया, "मम्मी ओ... मम्मी।"

मां घर के कामकाज में व्यस्त थीं! पर मां अपने काम में कितनी ही व्यस्त रहे, उसके कान बच्चों की आवाज़ की टोह में ही रहते हैं। उसने आवाज़ सुनकर वहीं से हांक लगाई, "क्या है रे!"

"मम्मी ज़रा इधर तो आओ... ज़ल्दी आना... बहुत ज़रूरी काम है।" कहता हुआ दीपू मां के समीप आ गया।

उसके उतावलेपन को देखकर मां ने कहा, "क्या है रे—बोल न! मुझे अभी बहुत से काम हैं। जल्दी बता क्यों हल्ला मचा रहा है?"

"नहीं मम्मी यहां नहीं बताऊंगा। पहले बाहर चलो सड़क पर।" कहता हुआ मां का पल्लू पकड़े बाहर की तरफ खींचने लगा।

अपने नन्हे की ज़िद रखने को मां काम छोड़कर आटा सने हाथों से ही बाहर निकल आई, "अब बता क्या है?"

"देखो... उधर देखो!" अपनी नन्हीं उंगलियों से, उचककर इशारा किया।

"किधर देखूं।" मां ने टालने के भाव से कह दिया।

"उधर देखो उधर।"

"उधर क्या है? मुझे तो कुछ भी नहीं दिख रहा है।"

"ओऽ होऽ मम्मी... तुम्हें कुछ भी नहीं दिख रहा है।" आवाज़ में खीझ भरी उत्सुकता झलकने लगी।

"ऊं हूं कुछ भी नहीं।"

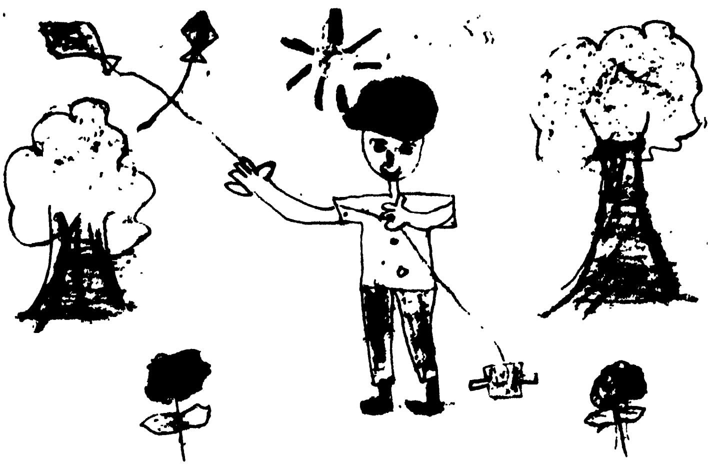

कुणाल पूरे, चौथी, इंदौर

"मम्मी उधर देखो सड़क के किनारे, झाड़ी की बगल में। चलो मैं दिखाता हूं।"

और वह मां को खींचता हुआ-सा ले चला, जहां एक सतरंगी पतंग पड़ी थी, बिलकुल नई की नई।

"अरे, ये तो पतंग है।"

"हां, यही तो... देखो न! कितनी अच्छी है। लाल, पीली, हरी... यह तो बड़ी देर से यहां ऐसे ही पड़ी है मम्मी! इसमें डोर बांधकर दे दो मैं ऊंची बहुत ऊंची उड़ाऊंगा। मोनू उड़ाता है न, उससे भी ऊंची।" और वह खुशी से मां की आंखों में झांकने लगा।

मां ने आसपास देखा, कोई नहीं है! किसी की होती तो ले जाता। लगता है कहीं से कटकर आई है या ले जाते समय गिर गई है! तभी दीपू ने झझकोरा, "मम्मी... ले लूं?"

"अच्छा ले लो।"

बच्चा खुशी के मारे खिल उठा। लगा मानो उसे कोई गढ़ा हुआ ख़ज़ाना हाथ लग गया हो। सच ही तो है बच्चों की छोटी-छोटी खुशियां कितनी अपार होती हैं। ख़ज़ाने से भी कहीं बढ़कर!

मां पतंग लाकर डोर बांधने लगी। तभी मां के कंधे पर ठोढ़ी रखकर मां के पीछे से देखता दीपू कुछ सोचता हुआ यकायक बोल उठा, "मम्मी जी मैं यह पतंग कैसे उड़ा पाऊंगा?"

"क्यों क्या हुआ?" मां का डोर बांधता हुआ हाथ अचानक रुक गया।

"मम्मी यह पतंग किसी दूसरे की है।"

"तुम्हीं ने तो लाने को कहा था।" मां ने सफ़ाई दी।

"और तुम ले आईं। तुम ही तो कहती हो, किसी दूसरे की चीज़ नहीं लेना चाहिए।"

मां कुछ क्षण अवाक्-सी उसको निहारती रह गई। मुंह से कुछ कहते न बना।

"नहीं मम्मी मैं नहीं खेलूंगा।"

कुछ क्षण पश्चात् उसे बोध हुआ कि दीपू ठीक कह रहा है। उसने उसे गोद में भर लिया, "हां बेटा तुम ठीक कह रहे हो। जाओ वहीं रख आओ जहां पहले पड़ी थी।"

दीपू पतंग लेकर दौड़ चला। मां ने देखा उसके चेहरे पर आत्मसंतोष की झलक फूट पड़ी है।

☐ प्रतिभा चंद्र

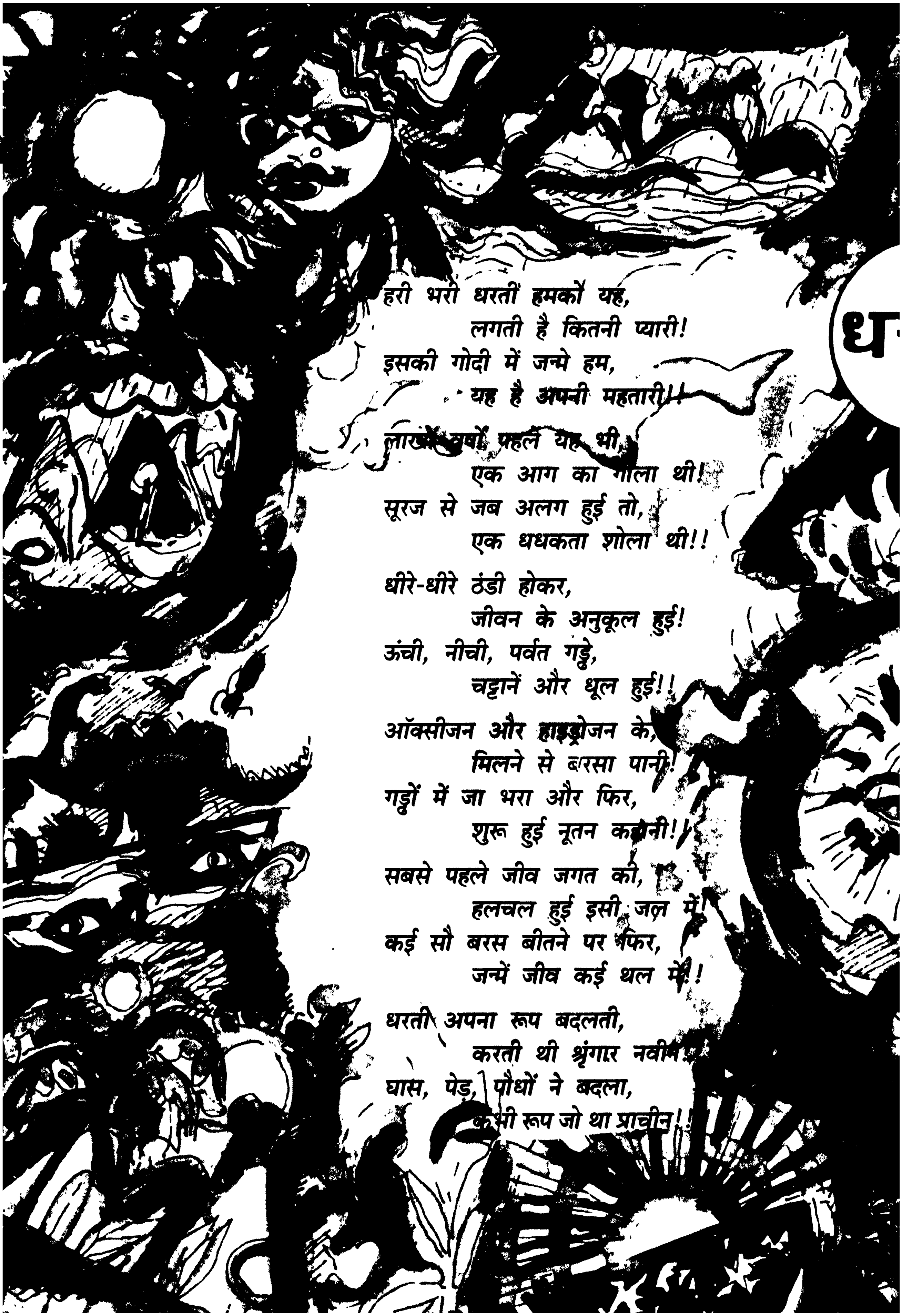

हरी भरी धरती हमको यह,
लगती है कितनी प्यारी!
इसकी गोदी में जन्मे हम,
यह है अपनी महतारी!!

लाखों वर्षों पहले यह थी,
एक आग का गोला थी!
सूरज से जब अलग हुई तो,
एक धधकता शोला थी!!

धीरे-धीरे ठंडी होकर,
जीवन के अनुकूल हुई!
ऊंची, नीची, पर्वत गड्ढे,
चट्टानें और धूल हुई!!

ऑक्सीजन और हाइड्रोजन के,
मिलने से बरसा पानी!
गड्ढों में जा भरा और फिर,
शुरू हुई नूतन कहानी!!

सबसे पहले जीव जगत की,
हलचल हुई इसी जल में!
कई सौ बरस बीतने पर फिर,
जन्में जीव कई थल में!!

धरती अपना रूप बदलती,
करती थी श्रृंगार नवीन!
घास, पेड़, पौधों ने बदला,
कभी रूप जो था प्राचीन!!

घूम रही अपनी धुरी पर,
बनते इससे दिन व रात!
सोता जगता जगत तथा,
होते संध्या और प्रभात!!

चक्कर काट रही है अब भी,
अपने सूरज के चहुं ओर!
इसी गति से ऋतुएं बनती,
उष्ण शीत वर्षा का दौर!!

अब भी इसमें आग शेष है,
इसीलिए लगता है डर!
कभी गर्भ की आग निकलती,
ज्वालामुखी विकट बनकर!!

वैसे इसके वक्षःस्थल पर,
लहरा रहे कई सागर!
इनसे उठकर मानसून,
वर्षा करते हैं झर झर झर!!

रेलें चलती, खेती होती,
शहर बसे हैं बड़े-बड़े!
भीड़ बढ़ी है भार बढ़ा है,
घृणा बढ़ी होते झगड़े!!

अपने बेटों की इस प्रगति पर;
भी मां की आंखें नम!
हथियारों की होड़, छोड़कर,
कहे हटाओ एटम बम!!

☐ नंद किशोर 'निर्झर'

चित्र : चंदन सिंह भट्टी

बुलबुल

सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा,
हम बुलबुलें हैं इसकी, यह गुलिस्तां हमारा।

मशहूर कवि इक़बाल की उक्त कविता तुमने ज़रुर सुनी होगी। मीठी आवाज़ में गाने के लिए बुलबुल प्रसिद्ध है। उर्दू कविता में बुलबुल का अपना विशिष्ट स्थान है, किंतु मज़ेदार बात यह है कि जो बुलबुल मधुर आवाज़ के लिए जानी जाती है वह हमारे देश की बुलबुल है ही नहीं। फ़ारस (ईरान) में पाई जाने वाली बुलबुल की आवाज़ सचमुच बड़ी मधुर होती है और इसीलिए फ़ारसी शायरी में इसे महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। हमारे देश की बुलबुल की आवाज़ इतनी मधुर न होते हुए भी उसने फ़ारसी शायरी के माध्यम से उर्दू शायरी में आकर अपनी जगह बना ली है।

भारत में बुलबुल की लगभग 40 जातियां पाई जाती हैं, किंतु सबसे अधिक परिचित और बहुतायत से पाई जाने वाली जाति वह है जिसकी पूंछ के नीचे लाल रंग का एक बड़ा धब्बा होता है। इसी कारण इसे गुलदुम भी कहते हैं। अंग्रेज़ी में रैडवैण्टैड बुलबुल कहते हैं। इसका सिर काला होता है और पीठ तथा सीना मटमैले रंग के। पेट इसका सफ़ेद होता है। बुलबुल का आकार गौरैया से कुछ ही बड़ा होता है। नर और मादा समान दिखते हैं।

बुलबुल घनी बस्तियों में रह लेती है और जंगल में भी। कीड़े-मकोड़े और फल इसका मुख्य भोजन हैं। बरसात के दिनों में ज़मीन से निकलने वाले पंख वाले दीमक और बरगद तथा पीपल के फल इसे बहुत प्रिय हैं। यह फूलों का रस भी पीती है। रस पीते समय यह एक फूल के परागकण दूसरे फूल तक पहुंचा कर परागण में सहायता देती है। बाग-बगीचों को हानि पहुंचाने वाले कीड़ों को भी यह चट कर जाती है। इस प्रकार यह मनुष्य की सहायता करती है। देश के कुछ भागों में ताड़ के पेड़ों पर मटके लटका कर ताड़ी इकट्ठी की जाती है। प्रायः बुलबुलें इन मटकों में से ताड़ी की चुस्कियां लेती हुई देखी जाती हैं।

बुलबुल का गाना दहियल या कोयल की तरह लंबा और मधुर तो नहीं होता फिर भी इसकी संक्षिप्त किलकारियां सुनने में अच्छी लगती हैं। कुछ वर्षों पूर्व तक पालतू बुलबुलों को एक दूसरे से लड़वाया जाता था और इनकी हार-जीत पर सैकड़ों रुपयों का सट्टा लगाया जाता था। यह प्रथा देश के कुछ भागों में अभी भी प्रचलित है।

बुलबुल का प्रजनन काल फरवरी से जून तक होता है। यह किसी पौधे की शाखाओं के बीच में तिनके रखकर प्याले के आकार एक सुंदर घोंसला बनाती है। कभी-कभी तो घर में या घर के पास लगे पेड़ पर भी बुलबुल अपना घोंसला बना लेती है। मादा 2 या 3 अंडे देती है। हल्के गुलाबी रंग के इन अंडों पर कत्थई रंग के धब्बे होते हैं। घोंसला बनाने, अंडों को सेने और बच्चों के लिए भोजन जुटाने का काम नर और मादा दोनों मिलकर करते हैं। बुलबुल के सुखी परिवार में कभी-कभी दुर्घटना भी हो जाती है। एक बार एक बुलबुल अपने बच्चे के लिए छोटा गिरगिट पकड़कर ले आई, किंतु बच्चा बहुत छोटा था। नतीजा यह हुआ कि गिरगिट गले में फंस जाने के कारण बच्चा मर गया।

□ अरविंद गुप्ते

(चित्र सौजन्य : बाम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी)

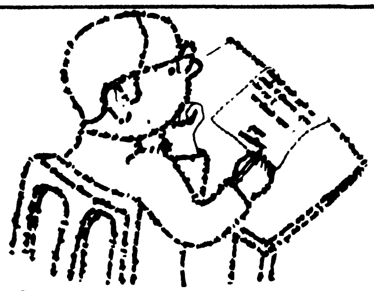

सवालीराम

■ साबुन मैले कपड़ों को कैसे साफ़ करता है? साबुन तथा डिटर्जेंट में क्या अंतर है?

□ यह तो तुमने देखा ही होगा कि केवल पानी से कपड़ों को धोने पर वे साफ़ नहीं निकलते हैं। उनमें मैल रह जाता है। दरअसल यह मैल कपड़े के रेशों को जकड़ लेता है। यह जकड़न रासायनिक या अन्य प्रकार की हो सकती है, इसलिए केवल पानी से यह मैल साफ़ नहीं हो पाता। इस मैल को निकालने के लिए साबुन इस्तेमाल किया जाता है।

साबुन में अन्य पदार्थों के अलावा झाग पैदा करने वाले रसायन भी होते हैं। साबुन दो काम करता है। पहले तो वह मैल के कणों को कपड़े से अलग करता है और फिर उसका झाग मैल के कणों को चारों ओर से घेर लेता है। झाग मैल को दुबारा कपड़ों पर नहीं लगने देता है। और जब हम पानी से कपड़ों को धोते हैं तो झाग के साथ-साथ मैल भी अलग हो जाता है। अगर साबुन में झाग न हो या कम हो तो मैल या तो पूरी तरह साफ़ नहीं होगा या फिर एक जगह से निकलकर दूसरी जगह चिपक जाएगा।

लेकिन साधारण साबुन के साथ एक समस्या है वह केवल मीठे पानी के साथ ही झाग पैदा करता है। अगर पानी खारा हो तो चाहे कितना भी साबुन घिसो, न तो पर्याप्त मात्रा में झाग आता है और न कपड़े साफ़ होते हैं। पानी के खारे होने का मतलब है उसमें कैल्शियम के लवण अधिक मात्रा में हैं। ये लवण साबुन के रसायनों को अपना काम ठीक से नहीं करने देते। इन्हें उदासीन या निष्क्रिय करने के लिए अन्य रसायनों की ज़रूरत होती है।

डिटर्जेंट, साबुन का ऐसा ही रूप है जिसमें ऐसे रसायन (पॉली फॉस्फेट) होते हैं जो कठोर पानी के लवणों को उदासीन कर देते हैं।

डिटर्जेंट से धुलाई करने पर क्या क्रिया होती है यह समझने के लिए चित्र देखो। डिटर्जेंट के हर अणु के दो हिस्से होते हैं। इसका एक हिस्सा पानी को अपनी ओर खींचता है, इसे हाइड्रोफिलिक कहते हैं। दूसरा हिस्सा पानी को अपने से दूर धकेलता है, इसे हाइड्रोफोबिक कहते हैं।

जब डिटर्जेंट पानी में घुलता है तो उसके अणुओं का एक हिस्सा पानी में बना रहना चाहता है और दूसरा पानी से दूर भागना चाहता है। फलस्वरूप सभी अणु पानी की सतह पर यानी पानी के ऊपर इकट्ठे हो जाते हैं, जो झाग के रूप में हमें दिखाई देते हैं। पानी से अलग होने की कोशिश में डिटर्जेंट का हाइड्रोफोबिक भाग मैल और कपड़े के रेशों के बीच में भी पहुंच जाता है, जहां साधारणतया पानी नहीं पहुंचता है। इससे रेशे और मैल के बीच की मज़बूत जकड़न कमज़ोर हो जाती है और कपड़े को रगड़ने पर मैल कपड़ों से अलग होकर पानी में चला जाता है। अलग हुए मैल के कण डिटर्जेंट के अणुओं से घिरे होने के कारण दोबारा कपड़े पर नहीं चिपक पाते हैं।

डिटर्जेंट में ऐसे लवण भी होते हैं जो मैल के अलावा अन्य धब्बों या गंदगी को भी साफ़ करते हैं। डिटर्जेंट में व्हाइटनर यानी सफ़ेदी लाने वाले पदार्थ भी होते हैं। इसके अलावा सुगंध, रंग तथा कपड़ों और हाथों की त्वचा की सुरक्षा के लिए भी कुछ रसायन मिलाए जाते हैं। ज़रूरी नहीं है कि ये हर डिटर्जेंट में हों ही।

इसका मतलब यह नहीं है कि डिटर्जेंट हमेशा साबुन से अच्छे होते हैं कुछ परिस्थितियों में तो साबुन ही इस्तेमाल करना बेहतर होता है।

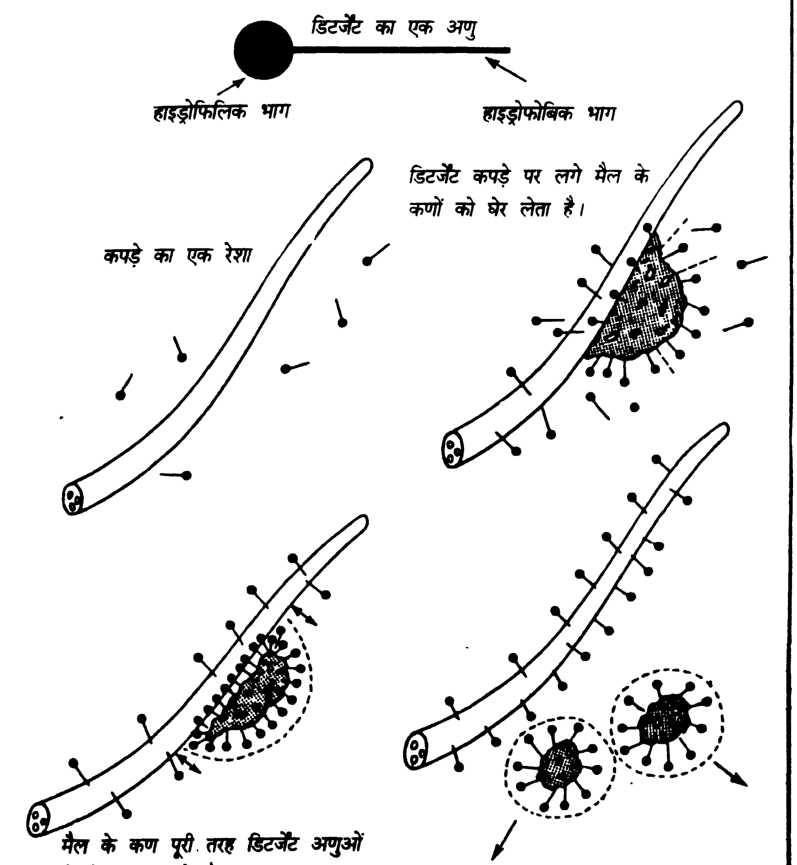

जिज्ञासा

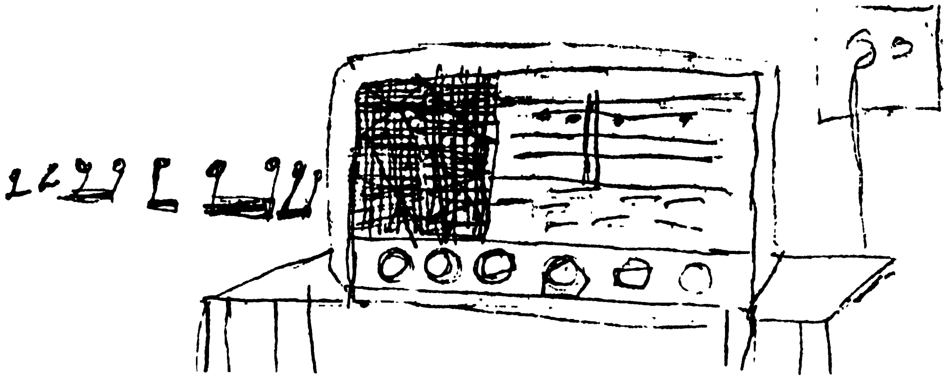

बात उस ज़माने की है, जब छोटे-छोटे ट्रांज़िस्टर नहीं थे। बड़े-बड़े रेडियो हुआ करते थे। दीवारों के सहारे ताक चिपकी रहती थीं। इन्हीं पर रेडियो रखे रहते। या फिर ऊंची-ऊंची मेज़ों पर सजे रहते। बच्चों की पहुंच से दूर।

हमारे घर पर भी ऐसा ही एक विशालकाय रेडियो था। यह रेडियो ऊंची आवाज़ में बजता था। गाने सुनाता था। इसमें तरह-तरह की आवाज़ें आतीं थीं। बाजा बजने की। आदमियों की आवाज़ें। औरतों की आवाज़ें। बच्चों की आवाज़ें।

मैं चाहता था, मैं उन बच्चों से मिलूं। उनसे खेलूं।

एक दिन मैं अपनी मां से बोला, "मां यह रेडियो खोलो।"

मां ने पूछा, "क्यों?"

मैंने बताया, "रेडियो में से बच्चे निकलेंगे। मैं उनके साथ खेलूंगा।"

मां हंसने लगीं। मैं रूठ गया। मैंने खाना नहीं खाया।

शाम को पिताजी दफ़तर से लौटे। उन्हें सारी बात का पता चला। वह भी हंसने लगे। उन्होंने मनाया।

मैं नहीं माना, "पहले रेडियो में से बच्चे और बाजा बजाने वाले आदमी निकालो।"

पिताजी ने समझाया, "खोलने से रेडियो ख़राब हो सकता है। इसमें आदमी-वादमी नहीं रहते।"

"फिर बोलता कौन है?"

"यह बिजली का यंत्र है। इसमें दूर से आदमियों की आवाज़ें आती हैं।"

"कैसे?" मैंने पूछा!

"कैलाश, अभी तुम सिर्फ़ साढ़े पांच साल के हो। बड़ी कक्षाओं में जाओगे। साइंस पढ़ोगे। तब समझ में आ जाएगा।"

"नहीं मैं रेडियो खोलूंगा।"

"देखो कैलाश ज़िद नहीं करते।" पिताजी ने डांट दिया।

दूसरे दिन मैंने सारी बात श्याम को बताई। श्याम मेरी कक्षा में ही पढ़ता था। उसने कहा, "ये सारे बड़े लोग ऐसे ही होते हैं। बच्चों की एक नहीं चलने देते। मैं तुम्हें एक पेचकस लाकर दूंगा। तुम उससे अपना रेडियो खोल लेना।"

मैं खुश हो गया। दूसरे दिन श्याम ने मुझे एक बड़ा-सा पेचकस ला दिया। मैंने उसे अपने बस्ते में छुपा लिया।

रात हुई। सब सो गए। पर मुझे नींद कहां? मैं तो रेडियो के बच्चों को अपना दोस्त बनाने की फ़िक्र में था।

कुछ देर बाद मैं चुपके से उठा। रेडियो वाले कमरे में गया। कुर्सी के सहारे मेज़ पर चढ़ा। वहीं रेडियो रखा रहता था।

थोड़ा ज़ोर लगाकर रेडियो को पलटा। पीछे चमकीले पेच नज़र आए। दो पेच तो आसानी से खुल गए। मैं खुशी से झूम उठा। और पेच नहीं खुल रहे थे। मेरा दिल डर के मारे धड़-धड़ करने लगा। कहीं मां-पिताजी न जाग जाएं। मैं हड़बड़ी में पेचकस को गत्ते के छेदों में से दूर तक ले गया और ज़ोर से गत्ते को हटाने लगा। तभी मेरी चीख़ निकल गई, "मां।"

मां दौड़कर आईं। पिताजी भी आए। देखते ही पूरा मामला समझ गए। मां बोली, "इसे करंट लगा है।"

पिताजी ने कहा, "शुक्र है। लकड़ी की मेज़ पर बैठा था। करंट का असर बहुत कम हुआ।"

मां ने मुझे सीने से लगा लिया।

फिर पिताजी ने उसी समय खुद रेडियो खोलकर दिखाया और समझाया कि वह कैसे काम करता है। हां, उसमें वास्तव में बच्चे नहीं थे।

☐ हरदर्शन सहगल

सभी चित्र : ऋचा, आठ वर्ष, भोपाल

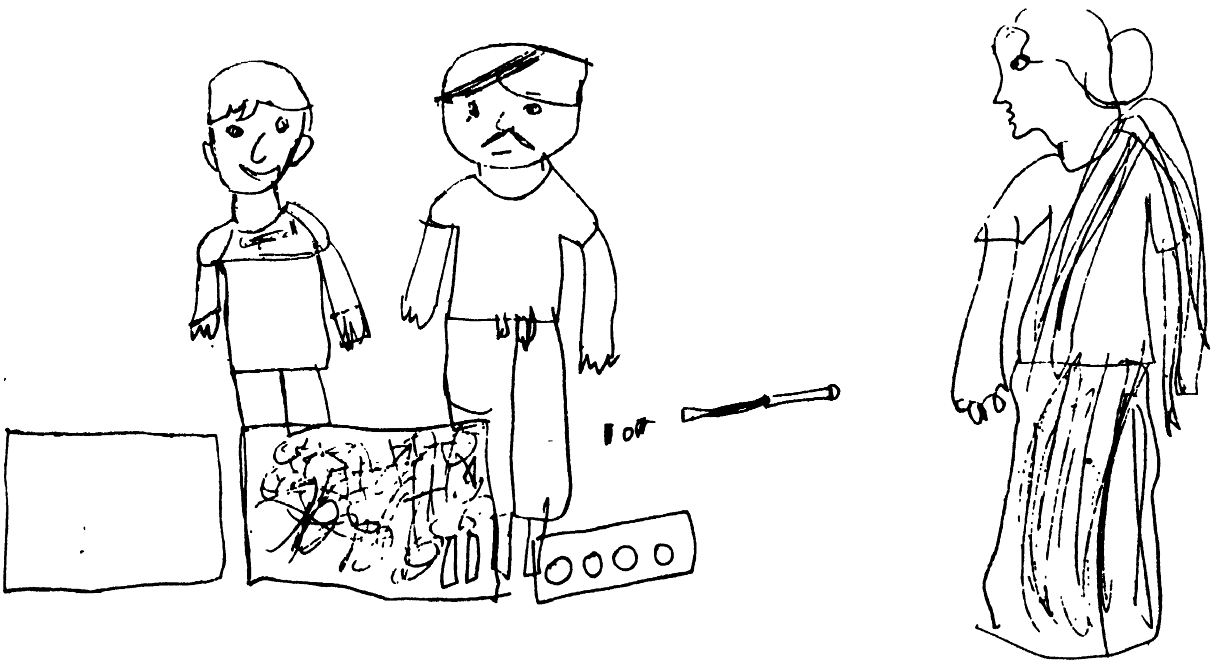

हृदय की धड़कन और नाड़ी

क्या तुमने कभी सोचा है कि तुम्हारे शरीर में खून कहां-कहां होता है और पूरे शरीर में कैसे पहुंचता है?

यहां दिया चित्र देखो। इसमें दो तरह की नलियां दिखाई गई हैं। ये नलियां ही हमारे शरीर में खून को हृदय से अन्य अंगों तक और अन्य अंगों से हृदय तक वापस लाती हैं। जो नलियां खून, हृदय से अन्य अंगों तक ले जाती हैं उन्हें **धमनी** तथा जो अन्य अंगों से खून हृदय तक वापस लाती हैं, उन्हें **शिरा** कहते हैं। हृदय और इन नलियों की पूरी व्यवस्था को **रक्त परिसंचरण तंत्र** कहते हैं।

आओ कुछ प्रयोग करते हैं।

अपने किसी साथी की छाती की बाईं तरफ कान लगाकर सुनो!

क्या तुम्हें कोई आवाज़ सुनाई दी? यह आवाज़ हृदय के धड़कने की आवाज़ है।

तुमने देखा होगा मरीज़ की जांच करते समय डॉक्टर स्टेथस्कोप लगाकर उसकी सांस की आवाज़ के अलावा हृदय की धड़कन भी सुनते हैं।

शरीर में रक्त लाने और ले जाने वाली नलियों को भी हम त्वचा के नीचे देख या महसूस कर सकते हैं।

अपने बाएं हाथ से अपनी दाईं भुजा को कोहनी के ऊपर कसकर पकड़ो, या अपने किसी साथी से कहो, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है।

अब दाएं हाथ की मुट्ठी बंद करके उसे 4-5 बार ऊपर-नीचे हिलाओ। दाईं बांह को ध्यान से देखो। क्या उस पर कोई नलियां उभरी हुई दिखाई पड़ती हैं?

अब बांह को छोड़ दो। नलियां फिर वैसी ही हो जाएंगी। तुमने जो नलियां देखीं, वे खून को हृदय की ओर ले जाती हैं। यही **शिराएं** कहलाती हैं।

कोहनी के ऊपर भुजा को कसकर दबाने से शिराएं क्यों फूल गईं? सोचकर बताओ!

तुमने देखा होगा कि डाक्टर या वैद्य मरीज़ की नाड़ी भी देखते हैं। आओ, हम भी नाड़ी की जांच करने का प्रयास करें!

अपने एक हाथ से दूसरे हाथ की कलाई पकड़ो। अब उंगलियों से कलाई को थोड़ा दबाओ।

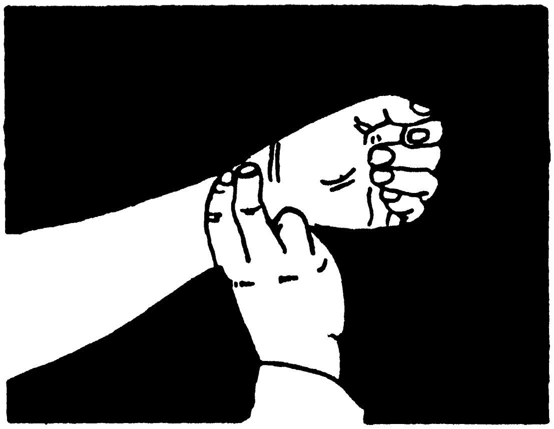

क्या कोई धड़कन महसूस हुई?

घड़ी की सहायता से पता करो कि यह धड़कन एक मिनट में कितनी बार होती है।

जब खून हृदय से धमनियों में जाता है, तब हृदय के साथ-साथ धमनियों में भी धड़कन होती है। इसी धड़कन को **नाड़ी** या **नाड़ी चलना** कहते हैं।

शरीर के उन अन्य भागों को ढूंढो जिनमें तुम नाड़ी की धड़कन महसूस कर सकते हो!

(सामग्री तथा चित्र : होविशिका की बाल वैज्ञानिक कक्षा आठ से)

मनुष्य का रक्त परिसंचरण तंत्र

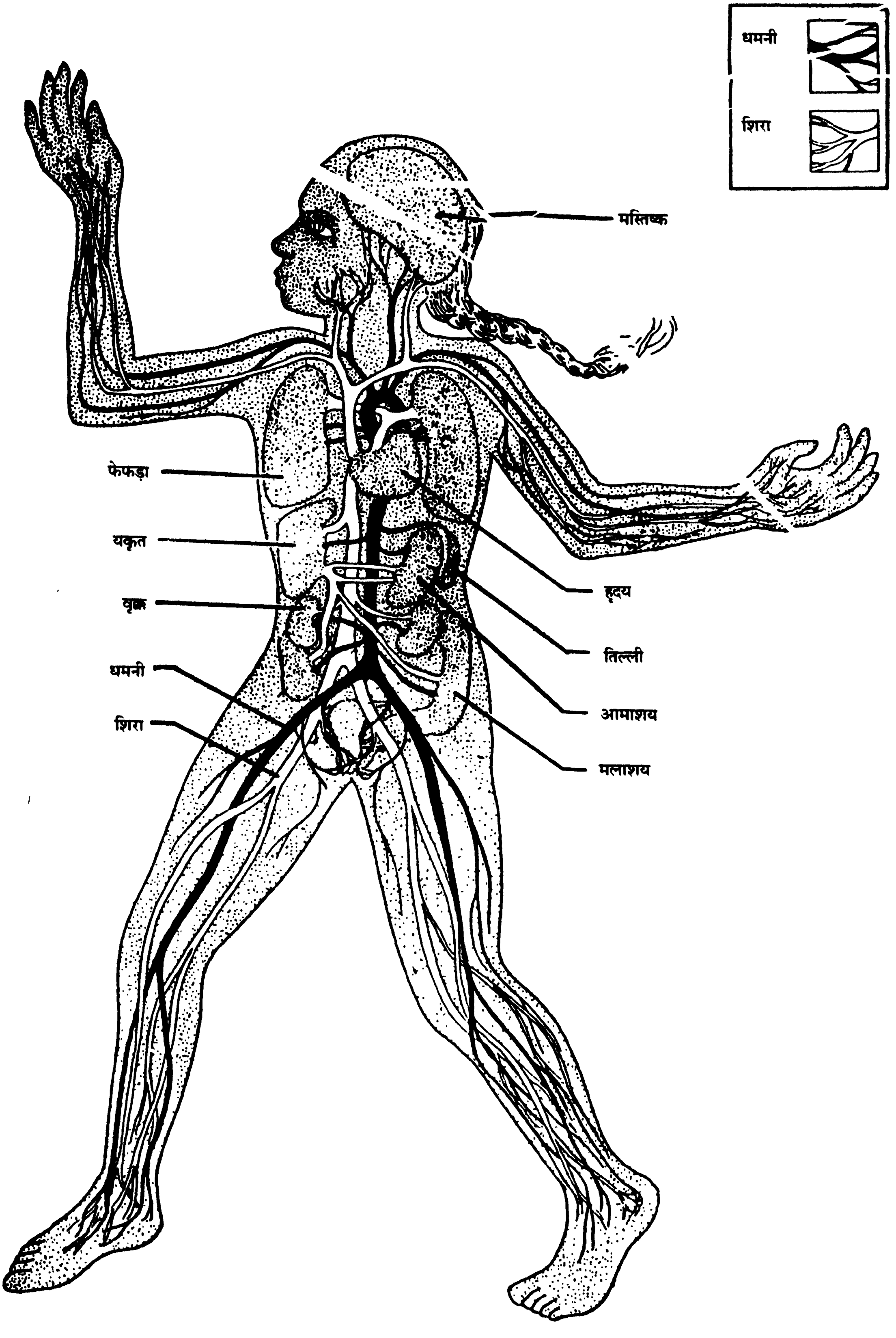

धारावाहिक-13

भूगर्भ की यात्रा

अब तक तुमने पढ़ा...

प्रोफ़ेसर अपने एक सहायक और पथ प्रदर्शक के साथ भूगर्भ की यात्रा पर हैं। रास्ते में उनका सहायक उनसे बिछुड़ गया। बाद में वह गिरने से बेहोश हो गया। होश में आने पर उसने प्रोफ़ेसर को अपने साथ पाया। उनका सफ़र फिर शुरू हुआ। वे एक अज़ीब-सी गुफा में थे। जहां समुद्र था, पहाड़ी थी, प्रकाश था, आकाश था। विचित्र पेड़ भी थे। वे आइसलैंड द्वीप से 10050 मील दूर पहुंच चुके थे, स्काटलैंड की पहाड़ियों के नीचे। फिर वे एक बेड़े पर सवार हुए। बेड़ा पथराई हुई लकड़ी से बनाया गया था। हैंस ने समुद्र से मछली पकड़ने के लिए कांटा डाला तो एक अजीब सी मछली मिली। अब आगे पढ़ो...

शनिवार 15 अगस्त। हर चीज़ पहले की तरह ही है। चारों ओर पानी ही पानी। ज़मीन का कहीं पता नहीं।

आज चाचा जी कुछ क्रोधित हो रहे थे। लेकिन क्यों? आख़िर जब मुझसे रहा न गया तो मैं पूछ ही तो बैठा।

"चाचा जी, क्या बात है?"

"कुछ नहीं।"

"आप कुछ परेशान से दिखाई दे रहे हैं।"

"मैं क्यों परेशान होऊंगा?"

"हम काफ़ी तेज़ी से चल रहे हैं।"

"हां, हम काफ़ी तेज़ी से चल रहे हैं फिर भी समुद्र कितना अधिक चौड़ा है।"

चाचा जी ने इसकी चौड़ाई लगभग 100 मील होने का अनुमान किया था। इतनी दूरी का तीन गुना चल चुकने के बाद भी हमें दूसरा तट नहीं दिखाई दिया।

"हम नीचे नहीं जा रहे हैं," प्रोफ़ेसर बोले "इतना समय बेकार ही गया।"

"लेकिन अगर हम सैकनसेम के बताए हुए मार्ग पर ही चल रहे हैं।"

"यही तो एक ऐसा सवाल है जो मुझे परेशान किए हुए है। क्या हम उसी रास्ते पर चल रहे हैं? क्या उसे समुद्र मिला था?"

मैं बोला "हम ठीक दिशा में हैं या नहीं? फिर भी हमें परेशान नहीं होना चाहिए।"

"हां, लेकिन हम गहराई में नहीं जा रहे हैं।"

6 बजे हैंस ने अपना साप्ताहिक पारिश्रमिक मांगा। चाचा जी ने तुरंत ही चुका भी दिया। रविवार अगस्त की 16 तारीख। सब कुछ वैसा ही, वैसा ही मौसम। हवा कुछ तेज़। जब मैं जगा तो सबसे पहले मैंने रोशनी के बारे में सोचा। मैं डरता था कि कहीं अंधेरा न हो जाए; लेकिन रोशनी जैसे बढ़ती ही जा रही थी।

समुद्र लगता था, कभी समाप्त ही न होगा। यह तो भूमध्य सागर या अटलांटिक सागर जितना बड़ा है। हमने रस्सी डालकर समुद्र की गहराई नापनी चाही लेकिन तली का कहीं पता न चला। जब हम रस्सी ऊपर खींचने लगे तो हमें बड़ी कठिनाई हुई। जब रस्सी ऊपर आई तो उसमें बंधे हुए कांटे में दांतों के निशान थे। मैं डर गया।

सोमवार 17 अगस्त। सारे दिन उन दांतों के बारे में सोचता रहा। डर रहा था कि किसी भी समय वे भयानक जंतु ऊपर आ सकते हैं। चाचा जी का भी शायद यही विचार रहा होगा। मैंने अपनी बंदूकों की परीक्षा कर ली। चाचा जी मुझे ऐसा करते देख मुस्कुरा उठे। अपनी मुस्कुराहट से शायद वे दिखाना चाहते थे कि हम दोनों एक ही बात सोच रहे थे। कभी-कभी पानी में कुछ विचित्र-सी गति दिखाई दे जाती और हमें भावी ख़तरे की सूचना दे जाती। हमें होशियार रहना चाहिए।

मंगलवार 18 अगस्त। शाम हुई। वह समय भी आया जब कि हमें नींद भी सताने लगी। मेरी पलकें झपकने लगीं और मैं सो गया। दो घंटे बाद एक ज़ोरदार झटके ने मुझे जगा दिया। किसी ने हमारा बेड़ा उठाकर लगभग 100 फुट दूर फेंक दिया।

"क्या बात है भाई?" चाचा जी बोले "क्या हम किसी चट्टान से टकरा गए?"

हैंस ने 1200 फुट दूर एक काली डूबती-उतराती हुई चीज़ की तरफ़ इशारा किया। मैंने उसी चीज़ की तरफ देखा और चिल्ला पड़ा "इतना बड़ा सूस (एक विशाल जलचर)।"

"हां," चाचा जी बोले, "और इतनी बड़ी समुद्री छिपकली भी।"

"और उसके पीछे इतना बड़ा मगरमच्छ। इसके दांत तो देखो। वह गया।"

"अर-रे-रे... वह देखो व्हेल।" प्रोफ़ेसर चिल्लाए।

"देखो पानी में कितनी ऊंची-ऊंची लहरें उठ रही हैं।"

हम अचम्भे में आकर खड़े ही रह गए। इन विशाल जंतुओं के आगे हम असहाय थे। इतने विशाल जंतु—जिनके दांतों से ही हमारे बेड़े के दो टुकड़े हो जाए। हैंस ने बचने के लिए बेड़े को दूसरी तरफ मोड़ना चाहा लेकिन दूसरी तरफ और भी नए-नए जानवर दिखाई दिए। 30 फुट लंबा एक सांप जो लहरों में अपना सिर इधर-उधर हिला रहा था। और एक 40 फुट लंबा कछुआ भी। अब बचना असंभव जान पड़ता था। ये जानवर पास ही आते जा रहे थे। हमारे चारों ओर घूम रहे थे। मैंने उनमें से एक पर बंदूक उठा ली। लेकिन फिर भी इससे क्या फ़ायदा? क्योंकि इन जंतुओं की खाल तो जैसे लोहे की बनी थी। गोलियों का उन पर क्या असर पड़ता? गनीमत थी कि मैंने गोली नहीं चला दी। हम इतना डर गए थे कि मुंह से एक शब्द भी नहीं निकल रहा था। वे पास आते जा रहे थे, एक तरफ सांप और दूसरी तरफ मगरमच्छ। मैं बंदूक चलाने जा ही रहा था कि हैंस ने मुझे रोक दिया। अब ये भयानक जंतु हमारे बेड़े से सिर्फ 300 फुट दूर थे। तभी न जाने क्या हुआ, दो भयानक जंतु एक दूसरे पर कूदे और लड़ने लगे। अच्छी ख़ासी लड़ाई शुरू हो गई। सौभाग्यवश गुस्से के कारण उनकी दृष्टि हम तक नहीं गई। थोड़ी देर बाद शेष जल जंतु व्हेल, समुद्री छिपकली, सूस और कछुआ इत्यादि भी इस लड़ाई में शामिल हो गए। मैंने उन सबको देखा। हैंस को अपने हाथ के इशारे से दिखाया भी। हैंस ने सिर हिला दिया और बोला, "दो हैं।"

"क्या कहा? दो हैं?" मैंने पूछा।

"ठीक कह रहा है यह," चाचा जी बोले।

"आपका क्या मतलब है चाचा जी?"

"मेरा मतलब यह है कि ये सिर्फ दो ही हैं। उनमें से एक का मुंह सूस का सा है, सिर छिपकली जैसा और दांत घड़ियाल जैसे। बड़ी भयानक छिपकली

है यह। इसका नाम है इक्थियोसांरस।"

"और दूसरे का नाम?"

"दूसरा है एक तरह का सांप। जिसका नाम है प्लेसियोसांरस। इसका शरीर कछुवे की तरह और गर्दन सांप की तरह है।"

हैंस का कहना ठीक था। वास्तव में दो ही जानवर थे और दोनों ही करोड़ों वर्ष पुराने जानवर। बड़ी भीषण लड़ाई छिड़ गई थी दोनों में। उनके लड़ने से लहरें पहाड़ों की तरह ऊंची-ऊंची उठ रही थीं। एक घंटा बीता, दो घंटे बीते लेकिन लड़ाई अभी जारी थी। कभी ये लड़ाके पास आ जाते और कभी दूर चले जाते। एकाएक दोनों विशाल जंतु दृष्टि से ओझल होकर समुद्र की अथाह गहराई में चले गए। कुछ मिनट गुज़रे। क्या नीचे अब भी लड़ाई हो रही थी? तभी एक सिर ऊपर की तरफ उछला—प्लेसियोसांरस का सिर। यह भयानक जंतु अब बहुत ज़ख्मी हो चुका था और शायद अत्यधिक पीड़ा के कारण अपना सिर ऊपर-नीचे हिलाता हुआ तड़प रहा था। धीरे-धीरे उसके शरीर के अंग गतिहीन होते गए। अंत में वह एकदम निर्जीव हो गया। अब हम दूसरे जंतु के लिए आश्चर्य में डूबे हुए थे कि वह ऊपर फिर से आएगा या नहीं।

बुधवार 19 अगस्त। सौभाग्यवश हवा बहुत अच्छी चलने के कारण हमारी इस खतरनाक स्थान पर चलने की गति बहुत बढ़ गई थी। चाचा जी फिर बड़े उत्तेजित हो रहे थे। हमारी यात्रा अब नीरस हो चली थी।

गुरुवार 20 अगस्त। आज हम साढ़े नौ मील प्रति घंटे की गति से चल रहे थे। दोपहर के लगभग हमने एक विशेष तरह की आवाज़ सुनी। बड़ी साफ़ सुनाई दे रही थी। यह किसी चीज़ की गरज़ की आवाज़ थी। लगता था कि सागर किसी चट्टान से टकरा रहा हो। हैंस ने खुश होकर देखने की कोशिश की कि आवाज़ कहां से आ रही थी। लेकिन दूर-दूर तक फैले हुए जल के अतिरिक्त उसे कुछ न दिखाई दिया। तीन घंटे बीत गए। शोर बढ़ता जा रहा था। मैंने चाचा जी से कहा कि यह किसी झरने की आवाज़ होनी चाहिए। चाचा जी ने सिर हिला दिया। लेकिन मुझे पूरा विश्वास है कि मेरा विचार ठीक था। क्या हम किसी झरने की तरफ बढ़ रहे थे जो हमें भूगर्भ में कुछ हज़ार फुट की गहराई तक पहुंचा देगा? इसमें संदेह नहीं कि प्रोफ़ेसर इसे पसंद करते लेकिन जहां तक मेरा सवाल था—चाहे जो हो, झरने की गरज़ की सी आवाज़ बढ़ती ही जा रही थी।

यह आया कहां से? समुद्र से या आकाश से? फिर मैंने अपनी दृष्टि समुद्र की ओर फेरी। समुद्र एकदम शांत और स्वच्छ था। यदि यह शोर झरने का था और यदि समुद्र का पानी किसी दूसरे निचली सतहवाले समुद्र में गिरकर मिलता है तो हमारे चारों ओर के पानी की गति लगातार बढ़ती रहनी चाहिए। लेकिन जहां तक मैं जान सका था, पानी की गति में कोई अंतर नहीं आया था। वह विशाल सागर तालाब की तरह शांत था। चार बजे के लगभग हैंस ने हम सबका ध्यान एक तरफ हाथ का इशारा करके आकर्षित किया।

"क्या बात है?" चाचा जी बोले।

"मैं एक बड़ा-सा झरना देख रहा हूं जो समुद्र से उछल-उछल कर उठ रहा है।"

"क्या कोई दूसरा भयानक जंतु मिल गया हमें।"

"शायद।"

"तब तो हमें इससे दूर चले जाना चाहिए।" मैं बोला।

"नहीं, हम देखेंगे कि यह क्या है," चाचा जी ने उत्तर दिया।

मजबूर होकर हमें वहां तक जाना ही पड़ा। मैं सोच रहा था कि ऐसा कौन जानवर हो सकता है जो बिना एक सेकेंड भी रुके लगातार इतना पानी उछालता रहे?

शाम के आठ बजे उससे छः मील से अधिक दूर नहीं थे। हमने उसे देखा। वह एक पर्वत की तरह था। लगता था कि समुद्र में कोई द्वीप छिपा हो। वह द्वीप था या जानवर? करीब 6000 फुट लंबा। इतना लंबा भी कोई जानवर हो सकता है? वह न तो हिलता-डुलता था और न तैरता ही था। पानी लगभग 500 फुट ऊपर उछल कर वर्षा-जल की तरह नीचे आता था। जैसे-जैसे हम उसके पास पहुंचते गए, मेरा साहस भी टूटता गया। मैंने सोच लिया कि अब आगे नहीं जाऊंगा। मैं चाचा जी के पास गया और पूछा,

"यह क्या है?"

चाचा जी चुप रहे।

अचानक हैंस खड़ा हो गया और उस तरफ इशारा किया जिधर ख़तरा था।

"द्वीप है।" चाचा जी बोले, "निःसंदेह द्वीप है।"

"लेकिन यह पानी कहां से फौव्वारे के रूप में छूट रहा है?"

"यह 'गीजर' है।" हैंस बोला।

"हां 'गीजर' ही है।"

मुझे अब अपने ही ऊपर गुस्सा आ रहा था कि मैं एक द्वीप को जानवर समझने की भूल कैसे कर बैठा। जैसे-जैसे हम पास आते गए, द्वीप और अधिक साफ़ दिखाई देता गया।

"हमें द्वीप के चारों तरफ देखना चाहिए।"

फिर भी हमें उस गिरते हुए पानी से दूर रहने की सावधानी तो रखनी ही थी, क्योंकि उसके बीच पड़कर हमारे बेड़े का कहीं पता न चलता। हैंस बड़ी सावधानी से हमें वहां ले गया। मैं चट्टान पर कूद गया। चाचा जी ने भी मेरा साथ दिया लेकिन हैंस बेड़े पर ही रुका रहा। यहां बड़ी गर्मी थी। अपने थर्मामीटर से मैंने देखा कि पानी 16° गरम था। यह पानी पृथ्वी के गर्भ में छिपी हुए आग के संपर्क में आकर ही गरम हुआ होगा। लेकिन चाचा जी का ध्यान इस तथ्य पर दिलाने का मुझे साहस न हुआ। चाचा जी ने इस ज्वालामुखी द्वीप का नामकरण मेरे नाम पर कर दिया। अब हम फिर अपनी यात्रा पर चल दिए।

हम समुद्र पर लगभग 800 मील की यात्रा कर चुके थे। इस हिसाब से हमें इंग्लैंड के नीचे होना चाहिए था।

21 अगस्त और शुक्रवार का दिन। हवा आज कुछ तेज़ थी और हमें तेज़ी से द्वीप से लिए जा रही थी। गरज़ता हुआ स्वर अब धीरे-धीरे धीमा होता जा रहा था। मौसम में कुछ-कुछ परिर्वतन हो रहा था।

(अगले अंक मे जारी)

जूलेवर्न के उपन्यास '*ए जर्नी इन टू दी सेंटर ऑफ अर्थ*' का अनुवाद। अनुवादक : प्रभात किशोर मिश्र। सौजन्य : इंडियन प्रेस, इलाहाबाद। सभी चित्र : शोभा घारे।

अकल बड़ी कि भैंस!

चित्रकथा : शिवेंद्र पांडिया

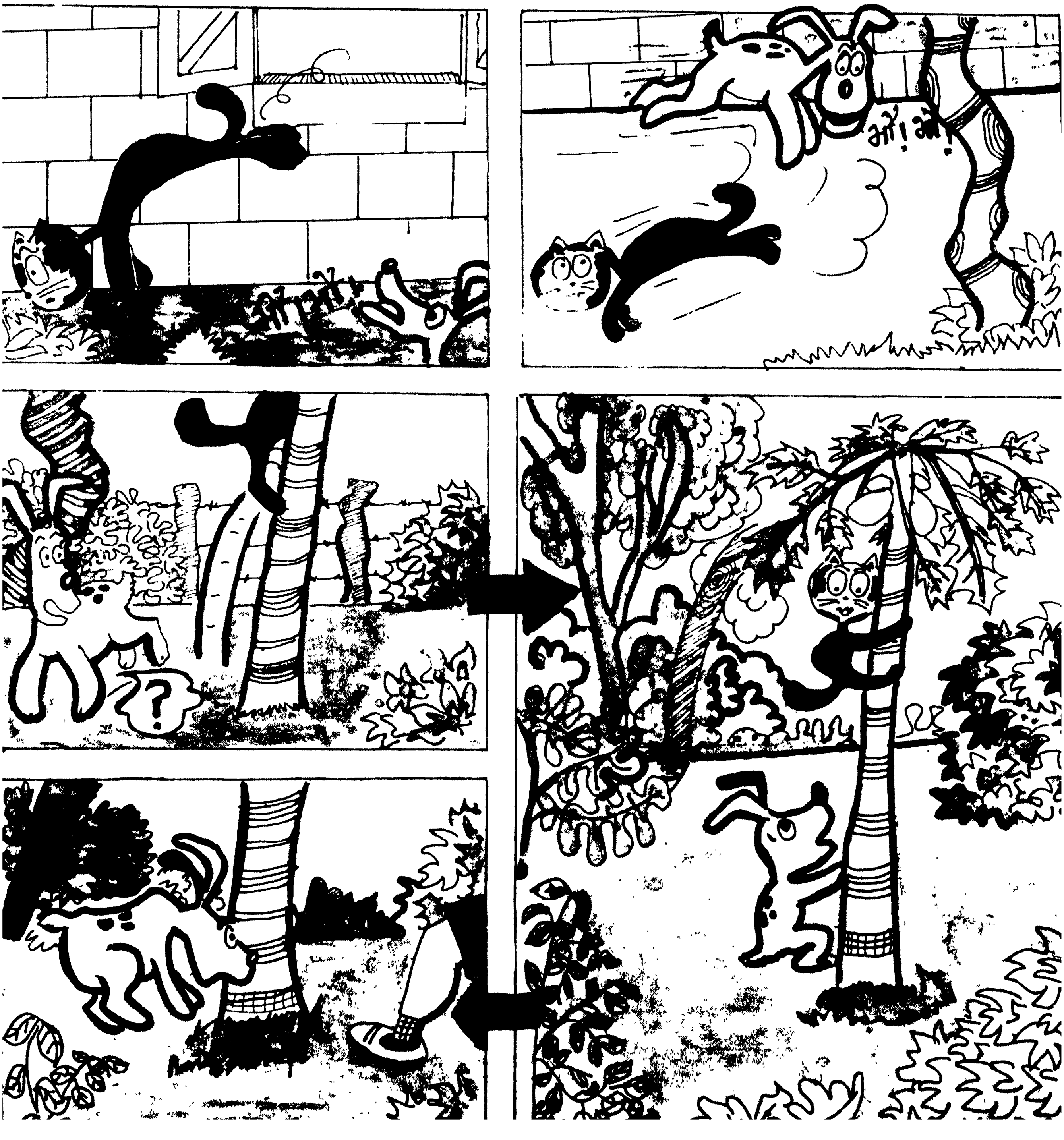

बम
बम
एक आईडिया आया, ... बिल्ली तक पहुंचने का
धड़ाम
?
खी..खी

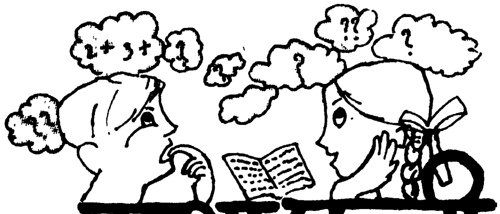

माथापच्ची

(1)

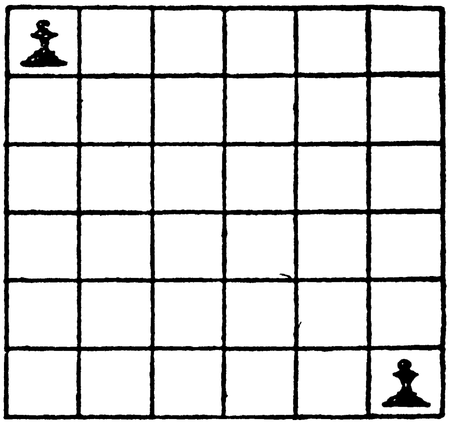

ऊपर दी हुई जाली में, जिसमें 36 खाने हैं, 12 गोटियां खड़ी या आड़ी, इस तरह जमानी हैं कि किसी भी पंक्ति में, दो ही गोटियां आएं। अगर पहली दो गोटियां चित्रानुसार रख दी जाएं तो बाकी कहां आएंगी?

(2)

मान लो तुम अपने मां-बाप की इकलौती लड़की हो। तुम्हारे तीन चाचा, एक बुआ, दादा-दादी तथा नाना भी हैं। एक मामा भी हैं, कोई 40 साल के। मामा की एक ही बहन हैं जो उनसे कोई 5 साल छोटी हैं। तुम्हारे मामा की बहन की एक इकलौती लड़की है। क्या तुम बता सकती हो कि वह लड़की रिश्ते में तुम्हारी क्या लगी और उसकी उम्र क्या होगी?

(3)

यहां कुछ समूह दिए हैं। प्रत्येक समूह में पांच सदस्य हैं। लेकिन इन पांच में एक ऐसा सदस्य भी है जो किसी विशेष गुण के कारण उनसे अलग है। जरा ढूंढो तो।

1. मूली, अमरूद, गाजर, शकरकंद, चुकंदर
2. सांप, मुर्गी, चूहा, मछली, कबूतर
3. जनवरी, मार्च, मई, जून, जुलाई
4. सोम, बुध, शुक्र, शनि, रवि
5. कुदाली, फावड़ा, हंसिया, खुरपी, घास

(4)

एक बहुत पुरानी तिजोरी है, उसकी चाबी भी है। लेकिन वह इतनी आसानी से नहीं खुल सकती। उसके दरवाज़े पर पांच चकतियां लगी हुई हैं और हरेक की किनारी पर 36 अक्षर खुदे हैं। चकतियों को घुमाकर एक खास शब्द बनाने के बाद ही चाबी लगती है। यह शब्द क्या है, पता नहीं! अब एक ही रास्ता है कि चकतियों पर खुदे अक्षरों से बनने वाले सभी शब्दों को बनाकर देखा जाए। एक शब्द बनाने और चाबी लगाने में तीन सेंकड लगते हैं। यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन आठ घंटे इस काम में लगाए, तब भी क्या दस दिन में तिजोरी खुलने की आशा की जा सकती है।

(5)

पांच लोगों के बीच सौ किलोग्राम शक्कर इस प्रकार बांटी जाती है कि—

दूसरे को पहले से इतनी अधिक मिलती है जितनी
तीसरे को दूसरे से,
चौथे को तीसरे से
और पांचवे को चौथे से अधिक मिलती है।

इसके अलावा प्रथम दो व्यक्तियों को अंतिम तीन व्यक्तियों से 7 गुना कम मिलती है। बताओ किसे कितनी शक्कर मिली?

(6)

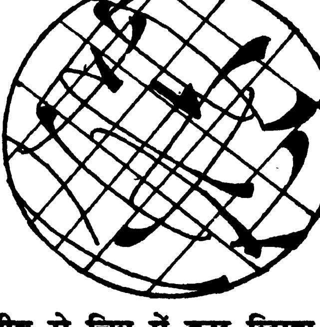

इस अजीब से चित्र में कुछ लिखा हुआ है। क्या तुम पढ़ सकते हो?

क्यों...क्यों.. 2

शाम** का झुटपुटा घिर आया था। मुनिया ने आज जी भर लगंड़ी खेली थी, पेट में चूहे कूद रहे थे। आते ही मुनिया रसोई में घुस गई। रोटी तो मिल गई, सब्ज़ी कुछ नहीं थी। उसने अचार की शीशी उठाई। अभी शीशी खोल भी नहीं पाई थी कि मां की नज़र पड़ गई। मां चिल्लाई, **'अरे शाम के समय अचार नहीं निकालते।'

मुनिया के होंठों पर हमेशा की तरह, 'क्यों?' आ गया!

मां ने अचार की जगह उसे गुड़ थमा दिया और अपने काम में लग गई!

हो सकता है तुम्हारी मां भी ऐसा ही कहती हों। क्यों कहती हैं! इस सवाल का उत्तर ढूंढा है कभी। नहीं तो देर किस बात की है, अब ढूंढ लो। देर आए दुरुस्त आए!

अपने बुजुर्ग, शिक्षक, दोस्त, जिसकी चाहो उसकी मदद लो!

***तुम्हारे जवाब 15 जनवरी, 1991 तक** हमें मिल जाने चाहिए। लिफ़ाफ़े, पोस्टकार्ड आदि पर '**क्यों.. क्यों.. 2**' लिखना मत भूलना!*

(7)

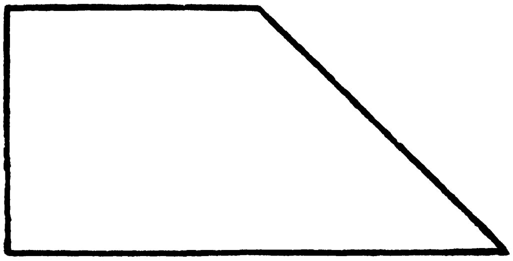

क्या तुम इस आकृति को चार टुकड़ों में बराबर-बराबर बांट सकते हो? ध्यान रहे टुकड़ों की आकृति भी बिलकुल ऐसी ही होनी चाहिए।

(8)

मान लो तुम्हारे सात दोस्त हैं। पहला दोस्त तुमसे हर रोज मिलता है, दूसरा हर दूसरे दिन, तीसरा हर तीसरे दिन, चौथा हर चौथे दिन, पांचवा हर पांचवे दिन, छंठवां हर छंठवें दिन और सातवां हर सांतवें दिन मिलता है। अगर यही क्रम जारी रहे तो क्या कोई दिन ऐसा आएगा कि सातों दोस्त एक साथ मिलने आ जाएं?

(9)

***एक** चींटा महाशय एक पहाड़ी पर डेढ़ किलोमीटर प्रतिघंटा की गति से चढ़े। शिखर पर पहुंचकर वहां एक सेकेंड भी रुके बिना नीचे उतर आए। उतरते समय उनकी गति, चढ़ने की गति से तीन गुना यानि साढ़े चार किलोमीटर प्रतिघंटा थी। पहाड़ी पर चढ़ने और उतरने में कुल छह घंटे लगे, तो बताओ ज़मीन से शिखर तक की दूरी कितनी है?*

(10)

एक होटल में जब लाइट गुल हो गई तो, होटल के मालिक ने मोमबत्तियां जला दीं। उसने अपनी टेबिल पर ऐसी मोमबत्ती लगाई जो चार घंटे तक जल सके और ग्राहकों की टेबिल पर ऐसी जो छह घंटे जल सके। दोनों तरह की मोमबत्तियां लंबाई में समान थी। पर मोटाई में अंतर था। ज़ाहिर है कि छह घंटे जलने वाली मोमबत्ती मोटी होगी। जब कुछ घंटों बाद लाइट दुबारा आई, तो होटल मालिक ने देखा कि उसकी टेबिल पर लगी मोमबत्ती की ऊंचाई ग्राहकों की टेबिल पर लगी मोमबत्ती से आधी थी। उसके पास घड़ी तो नहीं थी, पर वह बिना गलती किए बता सकता था कि लाइट कितनी देर गुल रही । क्या तुम बता सकते हो?

माथा पच्ची : हल सितंबर अंक के

(1) 12 किलोमीटर प्रति घंटा।

(3)

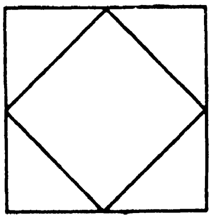

(4)

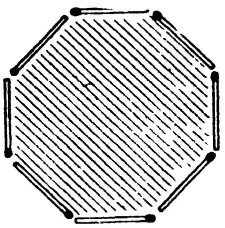

(5) कम से कम छह सीधी कटानें लगानी होंगी।

(7) षट-फलकीय पेंसिल में वास्तव में आठ फलक होते हैं, दो अन्य फलक उसके सिरे हैं।

दर्पण के संग खेलो

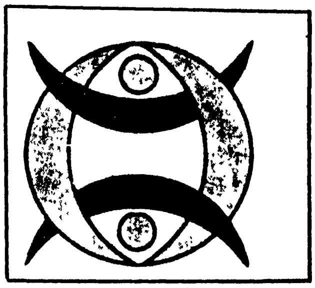

मास्टर चित्र

1

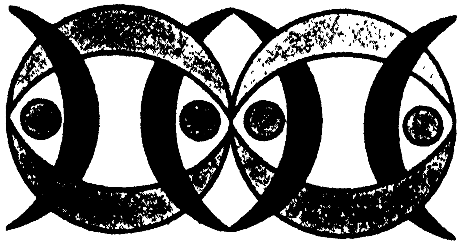

2

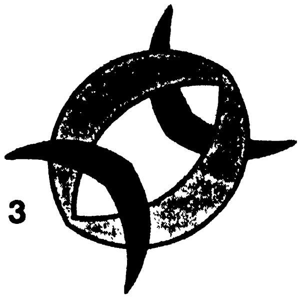

3

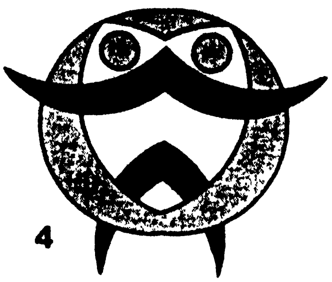

4

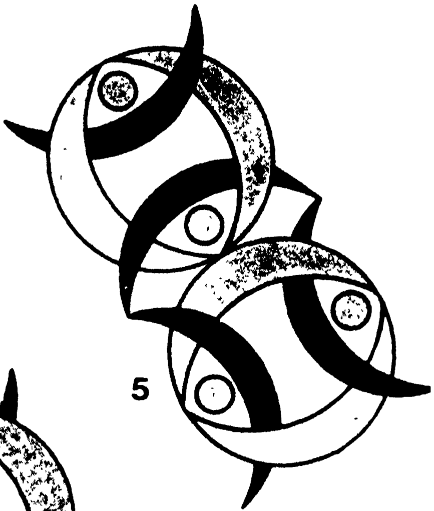

5

6

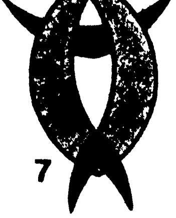

7

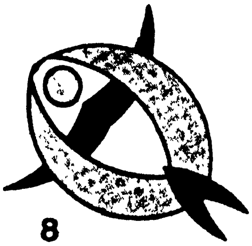

8

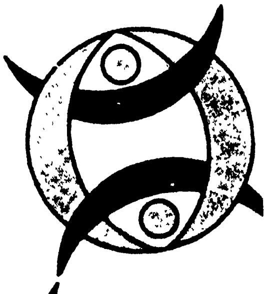

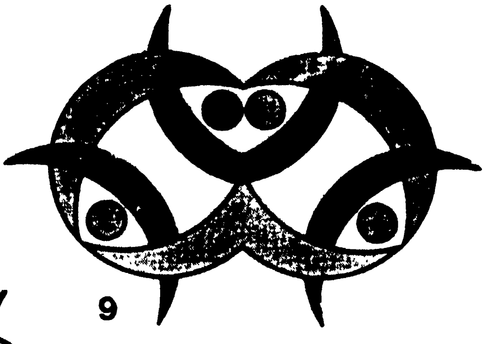

9

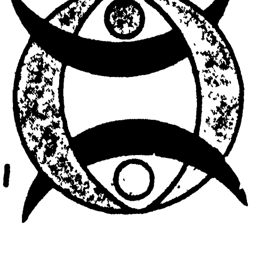

11

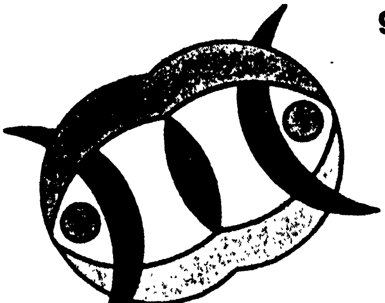

10

एक छोटा दर्पण या उसका टुकड़ा लो और मास्टर चित्र के पास रखकर उसका प्रतिबिंब देखो। प्रतिबिंब और मास्टर चित्र को मिलाकर एक नया चित्र बनता है। यहां दिए अन्य चित्र ऐसे ही बने हैं। दर्पण को थोड़ा आगे-पीछे खिसकाकर, तिरछा करके रखो और तुम भी बनाने की कोशिश करो!

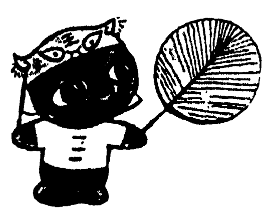

नन्हे गुदड़ीलाल के साहसिक कारनामे

उसे रात को एक सपना आया। सपने में वह एक आरामदायक छोटे-से पलंग पर लेटा हुआ था। उसने पीले रूमाल की चादर ओढ़ रखी थी और एक छोटे-से थैले का तकिया लगाया हुआ था। लैंप का हरा शेड छतरी की तरह उसके ऊपर लगा हुआ था।

अचानक उसे लगा, जैसे फिड्फिड् अंदर आ गई हो। उसने चादर से अपने को अच्छी तरह ढक लिया, जिससे फिड्फिड् उसे देख न सके।

"पापा!" फिड्फिड् ने कहा। "गुदड़ीलाल न जाने कहां गायब हो गया है। शाला में भी नहीं है।" बोलते-बोलते वह रोती भी जा रही थी।

यह सुनकर गुदड़ीलाल को बहुत बुरा लगा।

"मैं यहीं हूं, मैं कहीं नहीं गया हूं।" उसने मन ही मन कहा। "मैं अब फिड्फिड् को ज़्यादा नाराज़ नहीं करूंगा। उसका कहना ठीक था। अनाज एक मूल्यवान चीज़ है। मैं उसकी आलोचना स्वीकार करता हूं। मैं अब भागकर कहीं नहीं जाऊंगा।"

फिड्फिड् रोने लगी। गुदड़ीलाल को बड़ा दुख हुआ।

"गुदड़ीलाल, तुम कहां हो?" वह रोती हुई बोली। यह आवाज़ तो फिड्फिड् की थी, पर वह अचानक नन्ही मुर्गी जैसी लगने लगी।

गुदड़ीलाल ने हाथ से चादर हटा ली और पलंग से नीचे कूद पड़ा। वह इतने ज़ोर से कूदा कि उसका

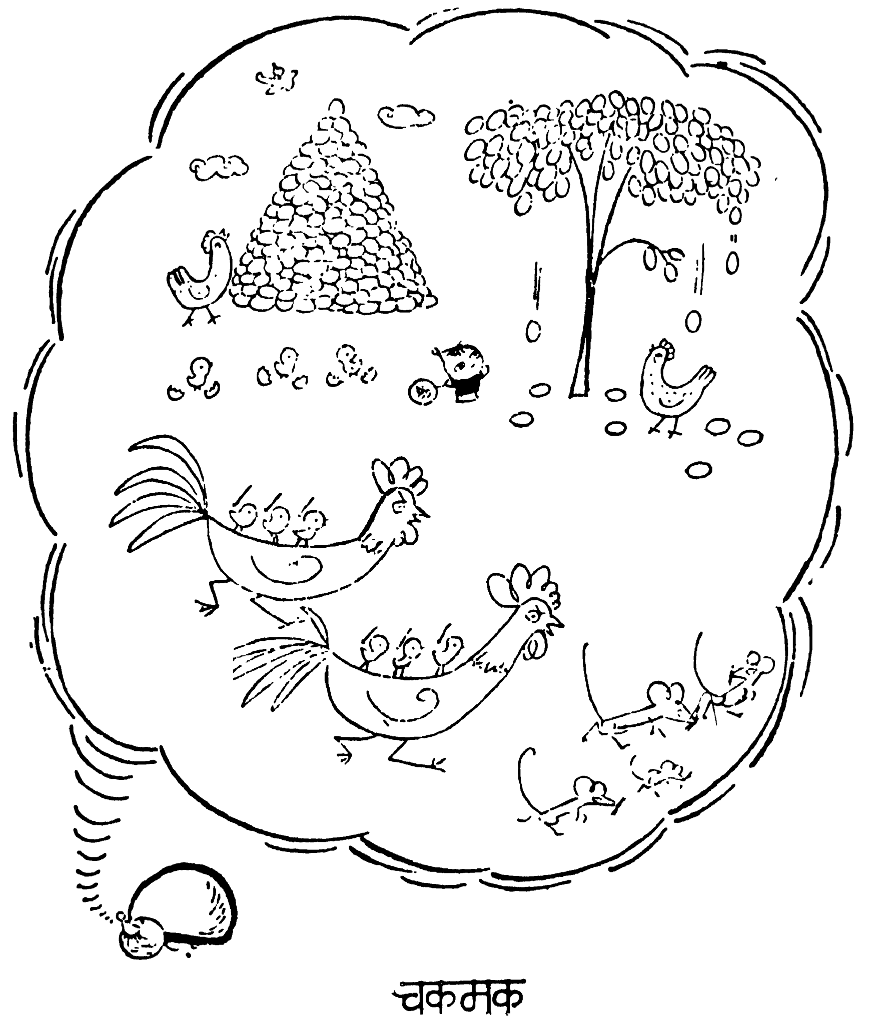

सिर टेबिल-लैंप से टकरा गया। टेबिल-लैंप गुदड़ीलाल पर गिर पड़ा। पर वह इतना भारी कैसे हो गया? पत्थर की तरह भारी कैसे हो गया? गुदड़ीलाल से हिला भी नहीं जा रहा था!

सबसे आश्चर्य की बात यह थी कि बिजली के बल्ब ने कई कलाबाजियां खाईं, फिर भी वह टूटा नहीं। पता नहीं यह कैसा बल्ब था? वह दरअसल बल्ब नहीं बल्कि एक बड़ा-सा अंडा था! अचानक अंडा टूट गया और उसमें से एक नन्ही मुर्गी निकल आई। वह गुदड़ीलाल को देखकर हंसने लगी। वह मुर्गी वास्तव में नन्ही कुकड़ूकूं ही थी!

"गुदड़ीलाल, मैंने तुमसे कहा था ना कि मैं अंडे दे सकती हूं।" वह हंसती हुई बोली। गुदड़ीलाल को चारों तरफ अंडे ही अंडे दिखाई देने लगे। वह नन्ही मुर्गी को गले लगाना चाहता था। लेकिन उसे अब भी ऐसा लग रहा था मानो वह किसी चीज़ के नीचे दबा हो। वह ज़रा भी नहीं हिल पा रहा था।

"मैं तुम्हें बचाने आई हूं!" नन्ही मुर्गी ने कहा।

फिर उसने ज़ोर से बांग दी। बांग सुनते ही दो रंगबिरंगे मुर्गे आ गए। मुर्गों ने बांग दी, तो हर अंडे से एक पीला चूजा निकल आया। चूजे कूदकर मुर्गों की पीठ पर बैठ गए। उन्होंने छोटे-छोटे चाकू निकाल लिए और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगे :

"सावधान! आज हम चूहों को मार डालेंगे और गुदड़ीलाल को बचा लेंगे!"

भयभीत चूहे धुएं के बादल की तरह एकदम अदृश्य हो गए।

"शाबाश!" गुदड़ीलाल ज़ोर से चिल्लाया और उछल-उछलकर ताली बजाने लगा। उन दुष्टों के भागते ही गुदड़ीलाल ने देखा, नन्ही मुर्गी एक अंडे को से रही है।

"इस अंडे से चूजा अभी तक क्यों नहीं निकला?" उसने पूछा।

"यह अंडा नहीं है," नन्ही मुर्गी ने हंसकर कहा। "यह तो गेहूं की एक बाली है।"

"यह तो बड़ी अच्छी चीज़ है!" गुदड़ीलाल ने कहा। "अगर हम इसे बो देंगे, तो हमारे पास बहुत-सा अनाज हो जाएगा।"

"ठीक है, आओ, हम इसे बो दें," नन्ही मुर्गी ने कहा।

उन्होंने गेहूं ज़मीन पर बो दिया। गुदड़ीलाल काफ़ी देर इंतज़ार करता रहा। लेकिन अंकुर नहीं फूटे।

"धीरज रखो," नन्ही मुर्गी ने कहा। "मैं जानती हूं, पौधों को कैसे उगाया जाता है।"

उसने पंख उठाया और गुदड़ीलाल को दे दिया।

"जहां गेहूं बोया है, उस जगह हवा करो!" उसने आदेश दिया।

गुदड़ीलाल ने वैसा ही किया। कुछ समय बाद उसे किसी चीज़ के फूटने की आवाज़ सुनाई दी। एक बड़ा-सा पेड़ ज़मीन से निकल आया। पेड़ बहुत बड़ा था और गेहूं की बालियों से लदा हुआ था। हर बाली में अंडे के आकार के गेहूं के दाने लगे हुए थे। गुदड़ीलाल पेड़ को तेज़ी से पंखा झलने लगा। गेहूं के दाने पके सेबों की तरह ज़मीन पर गिरने लगे।

गुदड़ीलाल और नन्ही मुर्गी गेहूं बटोरने में लग गए। गेहूं का ढेर पहाड़ की तरह बन गया। दोनों अपने-अपने काम में व्यस्त थे। तभी गुदड़ीलाल को एक लड़की की आवाज़ सुनाई दी। वह उसे बुला रही थी।

उसने चारों तरफ देखा। वह फिङफिङ की आवाज़ थी। उसने पास आकर गुदड़ीलाल को उठा लिया और प्यार किया।

पर यह तो एक सपना था। फिर गुदड़ीलाल की मुलाकात फिङफिङ से कभी नहीं हुई। गुदड़ीलाल ऐसे ही एक जगह से दूसरी जगह घूमता रहा।

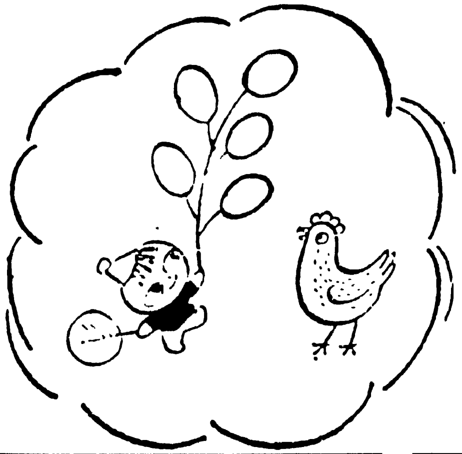

मूल लेखक : सुन यओच्युन
अनुवादक : जानकी एवं श्यामा बल्लभ
सभी चित्र : शन फेई

किशोर प्रतिभा का एक नया हस्ताक्षर . . . . ऋतु वर्मा

चौदह साल की उम्र यूं बहुत नहीं होती। पर इस उम्र तक आते-आते स्कूल जाने वाले सातवीं-आठवीं पास कर चुके होते हैं। इनमें से बहुत थोड़े लोग अपनी पढ़ाई आगे जारी रख पाते हैं। स्कूल से बिखर कर यहां-वहां काम-धंधों में लग जाते हैं। जो छोटी उम्र में काम करने लगते हैं वे इस उम्र तक आते-आते अपने काम में उस्ताद हो जाते हैं। दूसरी तरफ इस उम्र की लड़कियों के मां-बाप उनकी शादी की फ़िक्र में डूब जाते हैं। और शायद यह भी सोचते हैं कि लड़की को अधिक पढ़ाने से क्या फ़ायदा, आख़िर चूल्हा ही तो फूंकेगी। शायद तुममें से बहुत-सों के साथ ऐसा ही कुछ हो रहा होगा!

लेकिन रितु वर्मा भी चौदह साल की है—पर वह स्कूल नहीं जाती। इसलिए नहीं कि उसके माता-पिता ने मना किया है, बल्कि इसलिए कि कभी उसका मन ही नहीं हुआ - स्कूल जाने को। यह बात खुद रितु ने साल भर पहले हमें बताई, जब हम उससे मिले! तुममें से कई सोच रहे होंगे कि काश, हमसे भी कोई कहता कि मन नहीं है तो न जाओ स्कूल! और शायद कुछ सोच रहे होंगे कि स्कूल नहीं जाती तो ऐसा क्या करती है या करने वाली है कि चकमक में भी उसकी चर्चा हो रही है! कौन है रितु वर्मा?

रितु वर्मा एक पंडवानी गायिका है। जानते हो पंडवानी क्या है! पंडवानी मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ इलाके में महाभारत को गाकर सुनाने की एक लोक शैली है।

रितु जब सात साल की थी, तब उसने प्रसिद्ध पंडवानी गायक झाडूराम देवांगन को अपने ही गांव रुआबांधा (जिला दुर्ग) में पंडवानी गाते देखा था। झाडूराम नौ दिन तक हर रात पंडवानी गाते थे और रितु भी हर रात सुनती थी। झाडूराम चले गए, पर रितु उठते-बैठते, घर-आंगन में चलते-फिरते झाडूराम जी के गायन की नकल करने लगी। बस, धुन सवार हो गई उसे, और कुछ दिनों बाद गांव के एक कार्यक्रम में 'आदिपर्व' की एक कथा 'कर्ण जन्म' से रितु वर्मा ने पंडवानी गाना शुरू किया।

फिर तो छत्तीसगढ़ की विभिन्न जगहों — तुमली बोड़, राजनांदगांव, मानपुरी, कौहका, नंदिनी, छावनी, भिलाई, भड़ौदा आदि में रितु ने महाभारत के

अलग-अलग पर्व मंझे हुए कलाकारों की तरह खूब जमकर मंच पर गाए।

इतना ही नहीं फिर तो उसकी गायकी की चर्चा छत्तीसगढ़ से बाहर भी होने लगी। 1986 में मध्यप्रदेश आदिवासी कला परिषद् द्वारा रायपुर में आयोजित पहले 'पंडवानी प्रसंग' में रितु को भी आमंत्रित किया गया। 'प्रसंग' में रितु ने अपनी तोतली बोली में पंडवानी गाकर सुनने वालों को दंग कर दिया। 1988 में दिल्ली में संगीत नाटक अकादमी द्वारा आयोजित लोकोत्सव में रितु ने दो बार हिस्सेदारी की।

पिछले साल, यानि 1989 में रितु भोपाल में एक कार्यक्रम में आई, तो हम भी सुनने गए। इससे पहले हमने पंडवानी की एक और जानी-मानी गायिका, तीजन बाई को सुन रखा था। सोचा, छोटी-सी यह लड़की गाने में बहुत कच्ची होगी! कुछ देर सुनने के बाद यक़ीन ही नहीं हुआ कि इतनी छोटी उम्र में इतना हौसला और प्रतिभा इस लड़की में है। बिल्कुल मुग्ध हो गए हम।

प्रोग्राम के बाद हमने उससे बातचीत की। पता चला कि जल्द ही एक कार्यक्रम के लिए जापान जाने वाली है। जिस हौसले व बग़ैर हिचक के रितु पंडवानी गाती है, उतनी ही बात करने में शरमाती है—या हो सकता है हम लोग नए थे, इसलिए शरमा रही हो।

अगले दिन वह चकमक के कार्यालय में आई। उसके साथ उसके सहयोगी कलाकार तबला वादक नारद यादव, बेंजो वादक राजूलाल निर्मलकर, हारमोनियम वादक प्रेमलाल, खड़ताल वादक लखनलाल वर्मा (रितु के पिता) भी साथ थे।

पंडवानी की ख़ासियत है कि रागी (यानि साथ में गाने वाला) को संबोधित करके कहानी को खूब रसीला, लचीला व रोचक बनाकर सुनाया जाता है। साथ में हाथों व चेहरे से अभिनय करके विभिन्न भाव-भंगिमाओं से कहानी में जान डाली जाती है। पंडवानी गायकी की भी दो शैलियां हैं। एक में गायक खड़े होकर आगे-पीछे चलते हुए, घूमकर, अभिनय करते हुए गाता है, जैसे, तीजनबाई। दूसरी शैली में गायक एक ही जगह घुटनों के बल बैठकर हाथों व चेहरे की भाव-भंगिमाओं से कथा को रोचक बनाते हुए उसका बखान करता है। रितु इसी शैली में पंडवानी गाती है।

रितु ने बताया कि वह महाभारत के आदि, सभा, वन तथा विराट पर्व मंच पर सुना चुकी है। इनमें से एक-एक पर्व घंटों गाया जाता है।

ज़ाहिर है हमें आश्चर्य हुआ कि घंटों गाए जाने वाले पर्व रितु को जबानी कैसे याद हैं? रटन पद्धति की परीक्षा में तो रितु ढेर सारे अंक लेकर पास हो सकती है। उसने बताया कि वह हर दिन चार से पांच घंटे तक पर्वों को याद करती है। इसमें उसके रागी, नारद यादव मदद करते हैं। हमने पूछा, 'और भाव कौन सिखाता है?' रितु शरमाते हुए बोली, 'मैं भावों का रियाज़ खुद अकेले में करती हूं।' फ़िल्मी गीतों की बात आई तो झट से बोली, 'फ़िल्मी गीत पसंद नहीं हैं।' उन दिनों टी.वी. पर महाभारत सीरियल आ रहा था, रितु ने बताया, वह तो ज़रूर देखती है। उसने यह भी बताया कि उसके पहले गुरु गुलाबदास माणिकपुरी रहे। माणिकपुरी जी पहले रितु की मंडली में ही थे। उन्होंने रितु को शास्त्र सम्मत महाभारत पढ़ाई। उन्हीं की देखरेख में रितु ने अपना पहला कार्यक्रम दिया। बातचीत के दौरान जब स्कूल की बात आई तो बोली, 'जाने का मन नहीं है।'

जब भी हम रितु जैसे लोगों से मिलते हैं तो यही बात मन को सताती है, आख़िर स्कूल में जाकर बच्चे क्यों नीरस और बेजान हो जाते हैं? और जो स्कूल से बाहर, ज़िंदगी या-समाज से सीखते हैं - वह पंडवानी हो या कि खेती हो, या अन्य कोई काम - उसमें बहुत जल्दी माहिर हो जाते हैं। उनमें एक आत्मविश्वास भी झलकता है।

हम सोचते हैं कि अगर रितु को छह साल की उम्र में स्कूल में दाखिल कराया गया होता—जहां पंडवानी जैसी कोई चीज़ सिखाई नहीं जाती, तो वह आज कक्षा आठ की एक सामान्य छात्रा होती। लेकिन स्कूल जाने पर भी वह काफ़ी कुछ ज्ञान व जानकारी से वंचित रहती। तो ज्ञान, जानकारी, कौशल व सृजन से मिला-जुला स्कूल इस देश में कब बनेगा?

शायद यह सिद्ध करने के लिए कि स्कूल न जाने से उसे कुछ ख़ास नुकसान नहीं हुआ, रितु ने जाते-जाते अपना नाम खुद हमें लिखकर दिया, जो इस टिप्पणी के शीर्षक के साथ छपा है। मज़े की बात यह है कि हमने उसका नाम अपभ्रंश रूप में लिखा, यानि रितु और वह अपना नाम सही-सही लिख गई।

आलेख एवं छाया : विनोद रायना

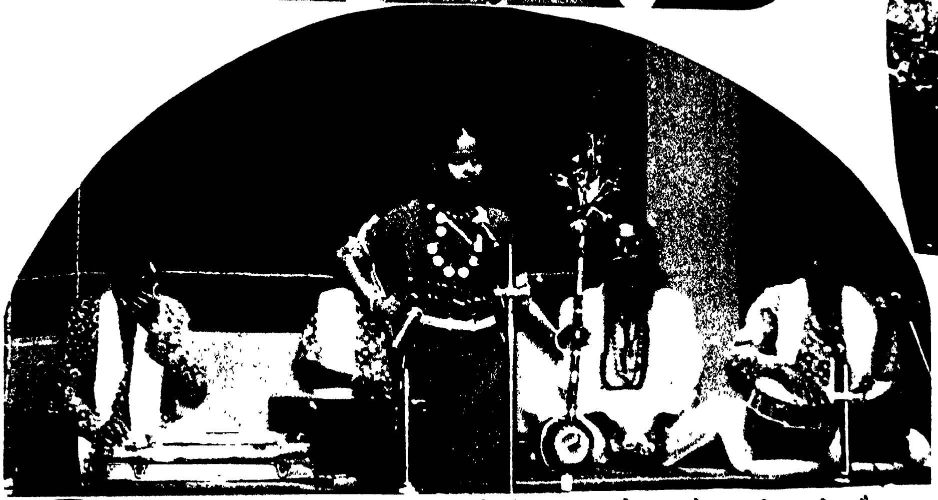

पंडवानी गायन की विभिन्न मुद्राओं में रितु : भोपाल के कार्यक्रम के दौरान!

12623